* श्री वीतरागायनमः *

श्रीपाल

लेखक—

श्री कन्हैयालाल जैन

प्रकाशक—

मंत्री—श्री आत्मानंद जैन सभा

अम्बाला शहर ।

वीर संवत् २४५६ | मूल्य ।) | विक्रम सं० १९८६
आत्म सं० ३४ | | ईस्वी सन् १९३०

सत्यव्रत शर्मा द्वारा, शान्ति प्रेस, आगरा में मुद्रित ।
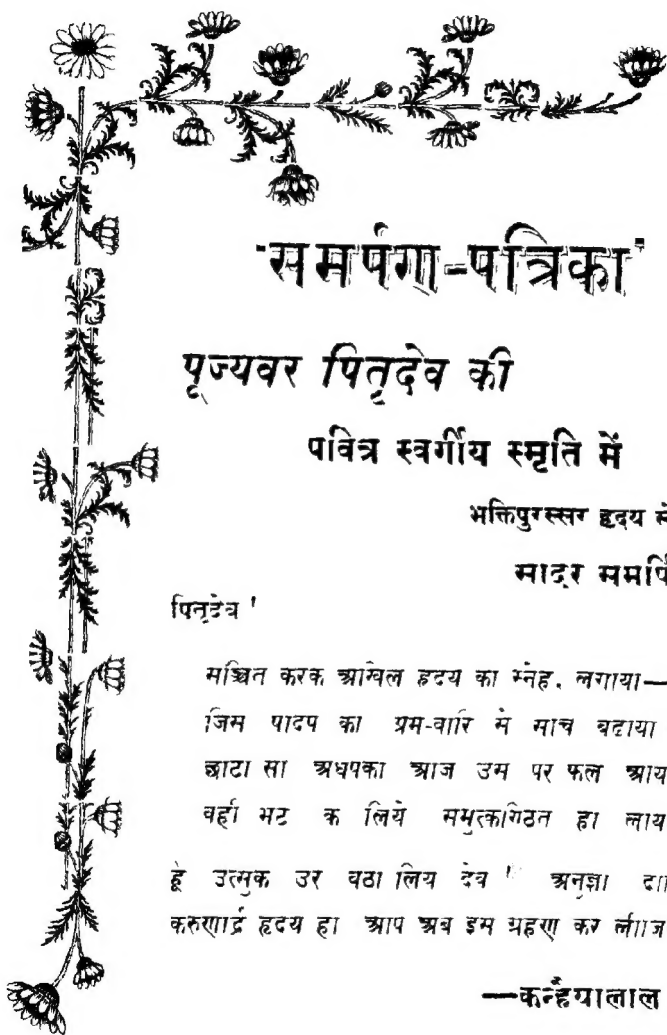
समर्पण-पत्रिका

पूज्यवर पितृदेव की

पवित्र स्वर्गीय स्मृति में

भक्तिपुरस्सर हृदय से

सादर समर्पित—

पितृदेव!

सञ्चित करके अखिल हृदय का स्नेह, लगाया—
जिस पादप को प्रेम-वारि से सींच बढ़ाया।
छोटा सा अधपका आज उस पर फल आया
वही भेंट के लिये समुत्कण्ठित हो लाया।

है उत्सुक उर बढ़ा लिये देव! अनुज्ञा दीजे
करुणार्द्र हृदय हो आप अब इसे ग्रहण कर लीजे।

—कन्हैयालाल।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक हमारी पाँच वर्ष पहले की रचना है। तब से अब तक कुछ हमारे प्रमादवश, कुछ प्रकाशन की अव्यवस्था के कारण, जिसका हम आगे उल्लेख करेगे यह आज प्रकाशित हो रही है। "कल का अनुभव आज अधूरा जान पड़ता है" इस उक्ति के अनुसार इस मे आज मुझे भी अनेक त्रुटियाँ दीख पडती है। विद्वान लोगो को तो इस मे और भी अधिक त्रुटियाँ दृष्टि पडेगी, वे उदारभाव से हमे इसकी सूचना देने की कृपा करे जिससे यदि कभी इसे द्वितीय सस्करण का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उनका ध्यान रक्खा जा सके।

कुछ समय हुआ तब कलकत्ते के बा० काशीनाथ जैन ने 'श्रीपाल-चरित्र' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है। उससे पहले यह पुस्तक प्रकाशको को अर्पित की जा चुकी थी, परन्तु कुछ आवश्यक कारणो से यह शीघ्र प्रकाशित न हो सकी और इससे पहले 'श्रीपाल' का दूसरा रूप साहित्य ससार के समक्ष आगया।

परन्तु फिर भी इसका प्रकाशन नहीं रोका गया। इसका कारण है। वह बिल्कुल प्राचीन पौराणिक कथानक की शैली मे लिखी गई और यह सर्वथा आधुनिक औपन्यासिक ढंग पर। इसके अतिरिक्त भाषा, भाव, घटना क्रम आदि का अन्तर जो महानुभाव दोनो पुस्तको का अवलाकन करेगे उनकी समझ मे सरलतापूर्वक आजायगा। विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी साहित्य के धुरधर लेखक, जैन सिद्धान्तो के सूक्ष्म निरीक्षक जैनतत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता लाला कन्नोमलजी एम० ए० ने इसकी भूमिका लिख कर पूर्ण परिचय देने की कृपा की है।

जिस आदर्श को लेकर यह प्राचीन उपाख्यान नवीनता के चोले में साहित्य संसार के सामने प्रकट हुआ है उसकी विशद् विवेचना करदी गई है। हम उस आदर्श के पालन मे कहाँ तक सफल-काम हुए हैं इसका विज्ञ पाठक स्वयं अनुमान करले।

पुस्तक प्रकाशन में विलम्ब होने के दो विशेष कारण हैं। पहले यह पुस्तक देहली निवासी बाबू श्रीचन्द जैन मन्त्री 'श्री श्वेताम्बर जैन, नवयुवक मण्डल' देहली को प्रकाशनार्थ दी गई थी। कुछ समय तक उनके पास रही परन्तु पश्चात् 'श्री आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला' के प्रकाशको ने उनसे प्रकाशनार्थ लेली, कुछ समय इमी परिवर्तन-प्रबन्ध मे लग गया। दूसरा कारण चित्रो की तैयारी से सम्बन्ध रखता है। इसमे जितने चित्र प्रकाशित किये गये हैं वे सब फाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग काटेज इलाहाबाद' द्वारा नये तैयार कराये गये है। यद्यपि उक्त कार्यालय ने चित्र तैयार कराने मे यथाशक्ति शीघ्रता की परन्तु फिर भी दूसरे के हाथ का कार्य होने से यथेष्ट विलम्ब हो गया। इन्हीं कारणो से पुस्तक प्रकाशन मे अप्रत्याशित विलम्ब हो गया।

पुस्तक के प्रकाशको को हम धन्यवाद दिये बिना नही रह सकते जिन्होने इसे सुन्दर और सुपाठ्य रूप मे छपवाने का प्रबन्ध किया है।

अन्त मे उस करुणा वरुणालय भगवान को धन्यवाद देते हैं जिसकी असीम कृपा से हम पुस्तक को पाठको के समक्ष रखने में सफल-प्रयत्न हो सके।

(स्नेह-सदन)
कलकत्ता
ता० १२–१–३०

जैनत्व का क्षुद्र सेवक—
कन्हैयालाल

जो कथाएं और आख्यायिकाएं पौराणिक चारित्राधार पर हमारे नवयुवको के चारित्रसंगठन मे उपयोगी और सहायताप्रद हो, उनका प्रचार सर्वथा उपयुक्त और सदैव वाञ्छनीय है। जैन पुराणो मे राजा श्रीपाल की कथा इसी प्रकार की है। लाला कन्हैयालाल जैन कस्तला ने इसी प्राचीन कथा के आधार पर "श्रीपाल" की रचना शुद्ध, सुन्दर एव सुवाच्य हिन्दी गद्य मे नवीन प्रणाली से की है। मैंने इसकी हस्त लिखित कापी आद्योपान्त पढ़ी। पुस्तक बड़ी रोचक, शिक्षाप्रद और उपयोगी है। इसका प्रचार जैन स्कूलो, पाठशालाओ और गुरुकुलो में होना परमोचित है। यो तो पुस्तक मे अनेक शिक्षाप्रद और रोचक बाते है पर वह निम्नलिखित विषयो पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है —

१—कर्म सिद्धान्त।
२—प्रेत्यभाव।
३—पतिव्रता धर्म।
४—मंत्र तंत्र सिद्धि।
५—सच्चरित्र और दुष्टचरित्र।
६—योगबल।

१—कर्म सिद्धान्त

जीव जैसा करता है वैसा फल पाता है। कर्मों का फल एक ही जन्म में समाप्त नहीं हो जाता है, वह अनेक जन्मों तक चलता है। पूर्व जन्मों के कर्म फलों से इस जन्म की व्यवस्था होती है और इस जन्म और पूर्व जन्म के बाकी बचे कर्मफलों से

आगामी जन्म का ढांचा बनता है। कर्मों का चक्र निरन्तर चलता रहता है। जो जीव निर्जरा की प्रचण्ड अग्नि द्वारा कर्मों को भस्म कर देता है वही निर्वाण प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त रीति से कर्म तीन प्रकार के हैं अर्थात् सञ्चित, क्रियमाण और भावी । जब सञ्चित कर्मों का आरम्भ हो जाता है तब उनका नाम क्रियमाण कर्म होता है और जिनका आरम्भ नही होवे वे भावी कर्म कहलाते हैं। किसी ने हत्या, चोरी और परस्त्रीहरण तीन अपराध किये। ये तीनो उसके सचित कर्म हो गये। पुलिस को इनमे से एक अपराध अर्थात् चोरी का पता लगा। उसने अपराधी को पकड़ा। अब समझो कि सचित कर्म के फल का आरम्भ हुआ। इसलिये यह क्रियमाण कर्म हो गया। इस अपराध (चोरी) के निर्णय होने पर अपराधी को दण्ड मिला जो उसे भोगना ही पडा, परन्तु अभी दो अपराधो के फल भोगने रह गये है। जिस अपराध का फल आरम्भ हो गया उसे तो वह मनुष्य रोक ही नही सकता है, परन्तु जो आने वाले कर्म फल है अर्थात् हत्या और परस्त्री हरण अपराधो के फल उनके रोकने की चेष्टा कर सकता है। अच्छे कर्म करने और शुद्ध वृत्ति रखने से मनुष्य आने वाले फल भोगो से बच सकता है अथवा उनके कषाय को कम कर सकता है। आगे अच्छे फल हों, ऐसी चेष्टा करना आगामी सञ्चित कर्म फल भोगो को रोकना और आगे के लिये अच्छे कर्म सञ्चित करना, मनुष्य की स्वतंत्र बुद्धि पराकाष्ठा के भीतर है। मनुष्य बिल्कुल ही परतंत्र नही है। आचार शास्त्र की दृष्टि से कर्म तीन प्रकार के है-सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जो नियत कर्म, कर्मफल की इच्छा, राग, द्वेष और मोह छोड़ कर किया जाता है, वह सात्त्विक कर्म है। जो कर्म कामना, अहंकार अथवा अतिप्रयास से किया जाता है वह राजसिक कर्म है। जो कर्म मोह से किया जाता है जिसमे यह विचार न रहे कि यह दूसरों को हानिकारक है और इसका अनुचित फल

होगा और अपने सामर्थ्य से भी बाहर है, वह तामसिक कर्म है। सात्त्विक कर्म श्रेष्ठ है। कर्मों का चक्कर रजोगुण से उठता है, जो काम को उत्पन्न करता है। काम सब को मोह मे डालता है और मोह कर्मबन्धन की जड़ है। इस कथा मे कर्मसिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण दिया है।

२—प्रेत्यभाव

पहले ही कह आये हैं कि कर्मों का फल एक जन्म मे समाप्त नही हो सकता है, इसलिये जीव का जन्म बार बार होना अनिवार्य है। यह दार्शनिक सिद्धान्त है और सब प्रामाणिक शास्त्रो मे प्रतिपादित है। जीव का फिर जन्म लेना प्रेत्यभाव कहलाता है और इसके महत्त्व का वर्णन दार्शनिक रीति से गौतम न्याय दर्शन मे किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे पूर्वजन्म के कर्मों का फल दूसरे जन्म मे होना राजा श्रीपाल के चरित्र मे भली भाति दिखाया है।

३—पातिव्रताधर्म

प्राच्य देशो मे विशेषत भारतवर्ष मे स्त्री के लिये पातिव्रत धर्म श्रेष्ठ कहा है। हिन्दू जाति के इतिहास मे ऐसी धर्मपरायण स्त्रियो की संख्या बहुत है। सीता, सावित्री, दमयन्ती, अनुसुइया इत्यादि देवियो के दिव्य चरित्र आज भी हिन्दू जाति की अमूल्य सम्पत्ति हैं। राजा श्रीपाल को रानियो के दिव्य चारित्र मे इसी पातिव्रत धर्म की उज्ज्वल ज्योति देदीप्यमान हो रही है। बालिकाओ और महिलाओ के लिये ये रानिया आदर्श रूप हैं।

४—मंत्रसिद्धि

भूमण्डल पर कोई सभ्य देश ऐसा नहीं है जहां प्राचीन काल में तंत्रमंत्र का प्रचार न रहा हो। भारतवर्ष तो इस विषय मे जगद्गुरु ही था। यहा मंत्रों के द्वारा सभी कुछ साध्य था। अब इस विद्या का लोप जड़वाद के प्रभाव से हो गया है।

तथापि कभी कभी मंत्र-तंत्र के चमत्कार का हाल सुनने में आ जाता है। यदि प्रस्तुत पुस्तक मे सिद्ध चक्र मंत्र की महिमा कही गई है तो वह सर्वथा गप्प नही है। सनातनधर्म के पुराणो मे मंत्र-तंत्र सम्बन्धी चमत्कारों का वर्णन बहुत स्थलों मे है।

५ —सच्चरित्र और दुष्टचरित्र

राजा श्रीपाल का सच्चरित्र और धवलसेठ का दुष्टचरित्र जो प्रस्तुत पुस्तक मे सविस्तार वर्णित हैं, पूर्ण शिक्षाप्रद हैं और चारित्रसगठन में बड़े महत्त्व के हैं। नवयुवको को सन्मार्ग पर जाने के लिये और पापपथ को त्याग करने के लिये इनसे बढ़ कर क्या उदाहरण हो सकते है।

६ —योगबल

योगशक्तियो की जितनी महिमा कही जाय थोड़ी है। पातञ्जल योग दर्शन मे योग सिद्धियो के चमत्कार वर्णित हैं। उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है यह भी लिखा है। इस पुस्तक मे राजर्षि अजितसेन का योगबल से अवधिज्ञान प्राप्त करना और अपने सब पाप कर्मों को योगाग्नि से भस्म कर डालना आश्चर्य की बात नही है। हिन्दू-बौद्ध-जैन सभी धर्मों मे योग शक्तियो का महत्त्व कहा गया है और सहस्रों उदाहरण ऐसे है जिनमे इनके चमत्कार पूर्णतया प्रकाशित है। कभी कभी इस समय भी ऐसे योगियो का हाल सुनने मे आता है जिन्होने अपने तपोबल से भौतिक जगत् पर विजय प्राप्त करली है। प्रस्तुत पुस्तक से धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक शिक्षा ही नही मिलती है, बल्कि इसके रोचक कथा पढने से ख़ूब मनोरंजन भी होता है।

यदि लेखक महाशय अपनी भूमिका मे राजा श्रीपाल के चरित्र पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश भी डाल देते तो इसका गौरव और भी बढ़ जाता।

—कन्नोमल एम० ए०

"श्रीपाल"

'मंगल-कामना'

हम प्रस्तुत पुस्तक के पुनीत विषय को प्रारम्भ करने के प्रथम उस परम पूज्य परमेश्वर के चरणाम्बुजो मे सादर प्रणाम करते है जिसके लिये राजा रङ्क एक समान है, जिसकी राग द्वेष हीन दृष्टि सारे ससार पर एक समान है, जिसके करुणाकर धनवान और धनहीन पर एक समान है।

× × × ×

(१)

(विकास)

तिमिराच्छादित शून्य रात्रि मे एक स्त्री अपनी गोद मे एक पञ्च वर्षीय बालक को लिये चुपचाप पैर बढाये चली जारही है। गहन वन का वह निर्जन दृश्य अन्धकार के कारण बडा भयंकर प्रतीत होता है । चारो ओर वायु की 'सन् सन्' ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है। तारो की क्षुद्र चमक निबिड़ तम तिमिर मे विलीन होरही है। ऐसी भयानक रात्रि मे यह कौन दुःखिनी स्त्री है जो ऐसी भयानक निर्जन अटवी मे कण्टकाकीर्ण मार्ग मे नगे पैर अकेली जारही है। उसके पैरो में कांटे लगने से रक्त प्रवाह होरहा है पर उस ओर ध्यान न देकर वह बढ़ी चली जाती है। मानो वह किसी भीषण शत्रु के हाथ से निकल कर भागी है। बार बार वह अपने शिशु को संभालती है, प्यार

करती है, मानो अपने प्राण देकर भी वह उसके प्राणो को बचाना चाहती है। इसी प्रकार वह दबे पैर चलते चलते बहुत दूर निकल गई यहां तक कि प्राची दिशा मे उषा की आभा झलकने लगी। अरुणोदय हुआ, और कुछ ही काल पश्चात् भगवान मरीचिमाली अपनी सहस्रश भुजाओ के द्वारा तिमिर शत्रु का नाश करते हुए प्रगट हुए, और पृथ्वी पर अन्धकार का नाम भी न रहा।

पाठको ! उस समय तो अधकार होने से स्त्री की वेषभूषा दृष्टिगत नही होती थी पर अब देखिये साफ़ देख पड़ता है कि स्त्री किसी उच्च घराने की है। उसका सुकोमल शरीर, उसकी वस्त्रभूषा कहे देती है कि वह अवश्य किसी राज्य घराने से सम्बन्ध रखती है। वह प्रत्येक वस्तु को देखकर चौक पड़ती है इस से प्रतीत होता है वह कभी अन्त पुरो से बाहर नही निकली। उसकी माग मे सिधूर नही है इससे प्रत्यक्ष प्रगट होरहा है कि वह अपने सौभाग्य से हाथ धो बैठी है। यद्यपि इस समय वह सब प्रकार श्रान्त, क्लान्त और दीन अवस्था मे है पर वह अवश्य किसी राजा की रानी रही है इस मे स देह नही। अस्तु

सूर्योदय होने पर वह स्त्री बहुत घबराने लगी और बार बार चौंक कर पीछे को देखने लगी। इतने मे सामने कुछ धूल उड़ती दीख पड़ी। उसे देखकर वह स्त्री बेहद घबरा गई और इधर उधर छिपने का यत्न करने लगी पर जहा वह स्त्री इस समय चल रही थी वहा कोई गोपनीय स्थान नहीं था। अतः वह कहीं छिप न सकी। शनै. शनै. वह धूल और बढ़ती गई और उस स्त्री ने देखा कि मनुष्यों का एक बड़ा झुण्ड उसकी ओर को चला आरहा है। जब वह झुण्ड समीप आया

" हे कुष्टिश्रेष्ठ ! मैं विपत्ति की मारी अनाथ
स्त्री हूं रक्षा करो"

पृ० स० ३

तब जान पड़ा कि वह सातसौ कुष्टियो का एक समूह है जो निरुद्देश इधर उधर घूमता फिरता है। उनमे कोई घोड़े पर कोई खच्चर पर कोई ऊट पर और कोई कोई गधे पर सवार था। बहुत से पैदल भी चल रहे थे। किसी का हाथ गल गया था। किसी के शरीर मे दाग पड गये थे उनमें से पीव बह रही थी। किसी के पैर गल गये थे। टाग सड़ गई थी। किसी के सिर मे कुष्ट से घाव हो रहे थे। कोई श्वेत कुष्ट से पीड़ित था। किसी के नख गल गये थे। किसी की अंगुली सड़ गई थी। उनकी ऐसी अवस्था देख कर स्त्री को बहुत घृणा हुई पर हृदय मे सोचने लगी कि शत्रु के हाथ मे पड़कर प्राण देने से यह कहीं अच्छा होगा कि मैं इनके साथ छिप कर रहूँ, और अपने तथा इस बालक के प्राण की रक्षा करूँ। फिर सौभाग्य से यदि कभी सुअवसर प्राप्त हुआ तो औषधोपचार द्वारा कुष्ट रोग के दूर करने का प्रयत्न करूंगी पर प्राण न रहने से तो किसी प्रकार की आशा नही रह जाती। यह सोच कर और इस सुअवसर को दैवयोग से मिला जानकर वह उनके मुखिया के सामने गई और हाथ जोड़ कर कहने लगी।

'हे कुष्टिश्रेष्ठ ! मैं विपत्ति की मारी अनाथ स्त्री हूं। और यह मेरा बालक है कृपाकर तुम मुझे शरण देकर रक्षा करो।

कु०—देवी तुम घबराओ नहीं और अपना सब वृत्तान्त सत्य सत्य मुझसे कहो मैं तुम्हे शक्ति भर बचाने का यत्न करूंगा।

स्त्री०—मैं सन्देह करती हूं कि शायद तुम्हे मेरी बात का विश्वास नहीं पर मैं सत्य ही कहूंगी। ध्यान देकर सुनो अंग देश मे चम्पापुरी नाम की एक विशाल नगरी है। वहां शत्रुओं के लिये सिंह समान-अपने रथ में सिंह जोड़ने वाला-वीर 'सिंह-रथ'

नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम कमलप्रभा था। वह सब प्रकार सुखी सम्पन्न एव वैभवशाली होने पर भी अपुत्र था। अनेक प्रयत्न करने पर उसके एक सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ। सर्व सुलक्षणसयुत होने से तथा अनन्त श्री का अधिपति होने के कारण उसका नाम श्रीपाल रक्खा गया। उसके जन्मोत्सव के उपलक्ष मे अनेक रस रंग हुए। जब वह बालक पांच वर्ष का हुआ तब राजा का अचानक उदरशूल से देहावसान हो गया। अखिल राज्य मे शोक छागया। कमलप्रभा रानी ने भी बहुत विलाप किया। पश्चात् मन्त्री मतिसागर ने उस पचवर्षीय बालक का ही राज्याभिषेक किया और स्वयं राज्य-कार्य्य का व्यवस्थित रीति से सञ्चालन करने लगा। इसी प्रकार कुछ काल बीता। एक दिन रात्रि काल मे मतिसागर रानी के समीप घबराया हुआ आया और कहने लगा कि रानी साहब आप कुवर साहब को लेकर अभी कही भाग जाइये क्योंकि श्रीपाल कुवर के चाचा साहब ससैन्य नगरी पर चढ आये हैं और कुवर को वन्दी बना कर स्वय राज्य पर अधिकार करना चाहते है। आप शीघ्र ही कुवर को ले जाइये क्योंकि यदि कुवर साहब जीवित रहे तो अनेक राज्यो के अधीश्वर होंगे। अस्तु, रानी कुवर को लेकर रातो रात भागी और वही कमलप्रभा अब तुम्हारे सामने बालक श्रीपाल को लिये खडी है। मुझे डर है कि शत्रु के सवार मेरी तलाश मे आरहे होंगे अतएव कृपाकर मुझे कही जल्दी छिपाओ"।

कुष्टियो के मुखिया ने यह सब सुन कर रानी को बड़ी सान्त्वना दी और सम्मान पूर्वक रानी को एक घोड़ा सवारी के लिए दिया। रानी श्रीपाल को गोद मे लेकर और कुष्टियो के भयानक

रोग स्पर्श से बचाने के लिए अच्छी तरह वस्त्राच्छादित करके घोडे पर बैठ गई।

कुष्टियो ने रानी को लेकर प्रस्थान किया, पर अभी अधिक दूर नही निकल पाये थे कि एक ओर से बडी धूल उडती दीख पडी और कुछ ही काल मे अश्वारोही सैनिको के एक झुंड ने उन्हे चहुँ ओर से घेर लिया। उनमे से एक ने आगे बढ कर उन्हे ठहरने की आज्ञा दी।

कुष्टियो के ठहरने पर उस अग्रणी ने कहा—"क्या तुमने इस मार्ग पर किसी स्त्री को एक बालक लिये जाते देखा है, यदि देखा है तो कहो वह किस ओर गई है"।

कुष्टियो ने कहा "नही महाराज हमने किसी स्त्री आदि को नही देखा है"।

अग्रणी—"मालूम होता है तुम सत्य नही बताते वह स्त्री अवश्य इसी मार्ग से गई है। सम्भव है कि तुमने उसे छिपाया भी हो और इसी कारण शायद न बताते हो। यदि सत्य न कहोगे तो हम तुम्हारी तलाशी लेकर उसे निकालेगे"।

कुष्टि—अरे महाराज हम तो कुष्टी है हमे किसी स्त्री से वा उसके कारण सत्यासत्य भाषण से क्या लाभ? यदि आप नही मानते है तो सहर्ष हम लोगो मे स्त्री को खोजिये पर यदि आप को भी हमारी वायुस्पर्श से यह रोग लग जाय तो फिर हमे दोष न दीजियेगा। और यह भी स्मरण रखियेगा कि फिर आपको भी हमारे समान मारा मारा फिरना पड़ेगा"।

उस अश्वारोही ने विचारा नौकरी करते हैं तो क्या इसलिये थोडी कि अकारण ही अपने प्राण देते फिरे। इतनी खोज पछाड़

पर भी यदि सफल न हों तो दैवेच्छा । और उसने सब सवारो को आगे बढ़ने की आज्ञा दी ।

इस प्रकार उन सवारो से पीछा छुडा अब यह कुष्टियो का दल इधर उधर भ्रमण करने लगा ।

पाठक ! रानी को श्रीपाल कुवर समेत इनकी सरक्षकता में छोड़ कर आप हमारे साथ आइये और एक नवीन स्थान की शोभा देखिये ।

(२)

"भाग्य-परीक्षा"

एक बडा भारी दरबार लगा है । ऊचे ऊचे विशालकाय स्तम्भो पर विविध रङ्गरञ्जित सुनहरी झालरो से सज्जित छत स्थिर है । स्तम्भो पर विविध प्रकार की मीनाकारी और पची का काम किया गया है । उन पर लाल, हरे, गुलाबी, पीले अनेक रङ्गों के परदे बधे हुए है जिन पर कारचोबी का काम बडे परिश्रम से किया गया है । दीवारे स्वर्ण खचित मीनाकारी से विभूषित की गई है । दरबार के ऊपरी भाग मे जो सगमरमर की खिडकियां अन्त पुर से सम्बन्ध रखने वाली महिलाओ को दरबार की शोभा देखने के लिये बनाई गई हैं उन पर बड़ी बारीकी से जाली का काम बनाया गया है । मानो चतुर शिल्पी ने गृह-निर्माण-विद्या-कुशलता यही समाप्त करदी है । नीचे फर्श पर मोटे मोटे ऊनी और मखमली कालीन बिछे है और ठीक सामने एक रत्नजटित सिहासन रक्खा है । सिहासन पर एक सुन्दर सुगठित देह वाला वीर पुरुष स्थित है । सिहासन के दाहिनी और बाई ओर अर्द्धचन्द्राकार स्वर्ण और चांदी की कुरसिया रक्खी है । जिन पर बडे बड़े वीर महानुभाव बैठे हैं,

उनमे कुछ वृद्ध हैं कुछ युवा। सब अपने अपने योग्य आसन पर विराजमान हैं। ऊपर की खिड़किया भी खाली नहीं, हैं उनमे सौन्दर्य का एक बड़ा ढेर, मणिनूपुरो की मधुर ध्वनि और मधुर मन्द वार्तालाप मिश्रित हास्य प्रवाह उपस्थित है। पाठक यदि आप को इस दरबार का परिचय सुनने की इच्छा हो तो सुनिये—

मालव देशस्थ प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी के सर्व विश्रुत प्रजापाल राजा का यह दरबार लगा है। सामने रत्नजटित सिहासन पर जो वीर पुरुष विराजमान है वही महाराज प्रजापाल उज्जयिनीपति है। महाराज प्रजापाल के दो रानिये सौभाग्य सुन्दरी और रूप सुन्दरी नाम की हैं। उनमे से सौभाग्य सुन्दरी जैनेतर धर्म तथा रूपसुन्दरी जैनधर्म के पालन करने वाली हैं। उनके क्रमश सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी (मदनसुन्दरी) नाम की दो कन्याए पूर्ण चन्द्रकला सी सौन्दर्यमयी सर्व सद्गुण सयुता और चौसठ कला-कुशला हैं ? वे अपने अपने शिक्षको से सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर चुकी है। अस्तु यह उन्ही की परीक्षा के लिए ऐसे ठाट बाट से दरबार लगा है। कहना न होगा कि परीक्षा दिवस की सूचना पहले ही होने से इस दरबार मे अनेक राजा और राजकुवर लोग पधारे है। इधर उधर के आसनो पर राज्य मन्त्री, पुरोहित, कुमारियो के शिक्षक और बाहर से आने वाले राजा महाराजा आदि स्थित है। एक बात और जान लेनी चाहिये कि मैनासुन्दरी को जैन-धर्म-शास्त्र विषयक और सुर सुन्दरी को जैनेतर शास्त्रो की शिक्षा दी गई थी इसका कारण उनकी माताओ का रुचि वैभिन्य था। अस्तु।

जब दरबार का सब साज सम्पूर्ण हो चुका और सब अपने अपने आसनो पर आकर बैठ गये यहा तक कि सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी की माताएं भी ऊपरी भाग मे अपने स्थानो पर

आकर बैठ गई तब दोनो कुमारिया बुलाई गई। देवाङ्गनाओ सा रूप धारण किये दोनो कन्याओ ने आकर महाराज प्रजापाल को नमस्कार किया। राजा ने आशीर्वाद दिया और दोनो को प्यार करके बैठाया। 'सारी सभा उनकी रूपमाधुरी और विनय-शीलता पर मुग्ध हो गई। अब महाराज ने दोनो बालिकाओ के शिक्षकों—सुबुद्धि जैन-सिद्धान्त-शिक्षक और शिवभूति जैनेतर धर्म-शास्त्र-शिक्षक--को बालिकाओ के बुलाने का संकेत किया। उन्होने खडे होकर सुर सुन्दरी और मैना सुन्दरी को महाराज के सामने बुलाया और उनसे कहा —

"पुत्रियो ! तुम्हे इतने काल से शिक्षा दी जारही है आज उसकी परीक्षा का दिन है। अत जो कुछ महाराज प्रश्न करे उसका यथोचित रीति से उत्तर दो" ?

तब राजा ने अनेक शास्त्र और उनके अङ्ग उपाङ्ग विषयक एव रहस्य मय प्रश्न किये पर सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी सबका सतोष-जनक और बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर देती गईं जिससे सारी सभा, राजा और शिक्षक आदि सब सतुष्ट होकर उनकी प्रशसा करने लगे। दोनो माताए भी हर्ष से अग मे फूली न समाई, तब राजा ने भी सतुष्ट चित्त होकर कहा पुत्रियो मै तुम से अत्यन्त प्रसन्न हू अब मै कुछ प्रश्न तुम से अलग अलग करू गा उनके उत्तर दो।

दोनो विदुषी बालिकाओ ने यह आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य की। तब राजा ने सुर सुन्दरी से पूछा कि

"जीवन लक्षण कौन ? काम की कौन प्रिया है ?
उत्तम सुरभित सुमन प्रकृति ने कौन किया है ?
क्या कुमारिका चाहे हो नव विवाह जिसका ?
एक वाक्य मे दो सक्षिप्त समुत्तर इसका" ?

" देवाङ्गनाओं का रूप धारण किए दोनों कन्याओं ने आकर महाराज प्रजापाल को नमस्कार किया "

पृ० सं० ८

The Fine Art Printing Cottage Allahabad

तब सुरसुन्दरी ने जरा गम्भीर होकर उत्तर दिया।

'सासरे जाय"

महाराज ने कहा—इस की विस्तार पूर्वक व्याख्या करो।

सुर०—जीवन का लक्षण-श्वास (सास) है

कामकी प्रिया-रति (रे) † है।

उत्तम सुरभित फूल-जुही (जाय)* का है।

तथा नव विवाहिता कन्या 'सासरे जाय' यही चाहती है।

इस उत्तर को सुनकर सारी सभा धन्य धन्य कह उठी। राजा रानी तथा गुरुजन आदि भी परम पुलकित हुए। राजा ने परम संतुष्ट होकर सुरसुन्दरी का सस्नेह मस्तक चुम्बन किया और बैठ जाने का आदेश दिया। तब उन्होने मयनासुन्दरी को लक्ष्य करके कहा—कहो वह क्या वस्तु है—

"आद्याक्षर बिन जो जग जीवन, जग भक्षक मध्याक्षर हीन ?
अन्त्याक्षर से हीन जगत प्रिय, नित नयनो मे लखे प्रवीण ?

मयनासुन्दरी ने कहा—'काजल' है।

सविस्तार व्याख्या पूछने पर उसने कहा—

"का" हटाने से "जल" रहता है जो जीव का जीवन है।

'ज" हटाने से "काल" रह जाता है जो जगत-संहारक है।

"ल" हटाने से "काज" रह जाता है जो सबको प्यारा लगता है।

इस समुचित उत्तर पर सभा में मयनासुन्दरी की बड़ी प्रशंसा हुई। राजा रानी अतीव हर्षित हुए।

---

† रे = रति का संक्षिप्त वा सूचक अक्षर माना गया है।

* जाय = जुही शब्द अपभ्रंश है—ले०

तब राजा ने दोनों कुमारियो को अपने सम्मुख बुलवाया और उनसे कहा—

"मैं एक समस्या तुम्हे देता हू। उस पर अपनी अपनी 'पूर्ति' अलग कर के दो।

समस्या है—"पुण्य पामिये एह"

सुरसुन्दरी ने उक्त समस्या की पूर्ति इस प्रकार की।

"सुन्दरता, धन, चातुरी, यौवन उत्तम देह।
इच्छित प्रिय पति सम्मिलन, पुण्य पामिये एह॥

मयनासुन्दरी ने इस प्रकार पूर्ति की।

"स्थिर मति न्याय सुनीति मे, शील सुनिर्मल देह।
सगति गुरु गुणवत की, पुण्य पामिये एह॥ *

ये समस्या पूर्तिया सुन कर राजा बडे प्रसन्न हुए। बोले—"पुत्रियो! मै तुम पर परम प्रसन्न हू जो इच्छा हो वर मागो मै सब कुछ देने मे समर्थ हू। राजा को रक और रक को राव बना देना यह मेरे बाए हाथ का खेल है। सारी प्रजा मेरे ही कारण सुख पाती है। जगत मे जिस पर मै सतुष्ट होऊ उसके चरणो पर त्रिलोक की ऋद्धि लुठित हो जाये, जिस पर मै कोप करू उसका सर्वनाश करदू।

सुरसुन्दरी ने कहा—"पिताजी आप सत्य कहते है आप सर्वशक्ति सम्पन्न है। जगत के दो ही प्राणरक्षक हैं, एक "महीपति" दूसरा "मेह"।

---

* इन समस्या पूर्ति के दोहों की सामग्री उपाध्याय श्री विनय विजय जी कृत 'श्रीपालरास' से ली गई है। समयानुकूलता के कारण कुछ उलट फेर कर दी गई है। ले०—।

यह सुन कर सब लोग सुरसुन्दरी की प्रशंसा करने लगे। कोई कोई तो कहने लगे कि सुरसुंदरी जैसी चतुर स्त्री संसार में नहीं है।

इसी अवसर पर कुरु जागल देशान्तर्गत शंखपुरी नाम की नगरी के राजा दमितारि का पुत्र अरिदमन भी आया हुआ था वह रूप गुण सम्पन्न सुन्दर एव बलिष्ठ युवक था। सुरसुन्दरी उसके रूप गुण पर मोहित हो गई। महाराज प्रजापाल ने वह गुप्त प्रणय ताड़ लिया और सुरसुन्दरी का अरिदमन राजकुमार के साथ पाणिग्रहण कर दिया। इस योग्य जोडे की सब लोग प्रशसा करने लगे।

ऐसे हर्ष एवं आनन्दोत्सव के अवसर पर भी मयनासुन्दरी नीरव रही। उसने किसी प्रकार के हर्ष वा विषाद का भाव प्रगट न किया। यह देख कर राजा बड़े विस्मय मे पडे और मयना-सुन्दरी से बोले—

'पुत्रि! तुम ऐसे सुन्दर अवसर भी मौन क्यो हो? इस सारी सभा म तुम्हारे चातुर्य एवं बुद्धि की तुलना नही है। अत तुम्हारे उदासीन भाव धारण करने का हमे बडा शोच है। तुम्हे जो उचितानुचित प्रतीत हुआ हो वह अवश्य कहो'।

मयना०—'पिताजी इस समय इस सभा मे मेरा कुछ बोलना उचित नही है। क्योकि समय देख कर, उचितानुचित का ध्यान रख कर, और परिस्थिति को विचार कर जो सभा मे नही बोलता वह मूर्ख एवं सभा चातुरी हीन है। यहा जो वार्तालाप का प्रसग छिड़ा है वह मेरे मनोनुकूल नही है इसी कारण मैने कुछ न कह कर मौन रहना ही उचित समझा'।

राजा—नही, हमारी यह इच्छा नही कि हम अपने कार्यों में किसी को सशंय उत्पन्न होने का अवसर दे और फिर यह तो

होही नहीं सकता कि जान कर भी उसके संशय निवारण का यत्न न करे। हमारी कृतियो मे जो दोषात्मक एवं समालोचनात्मक है वह निकल जाना चाहिये। मै चाहता हूं कि यही सभा में चाहे स्थिति अनुकूल हो वा प्रतिकूल । पर जो सशय तुम्हारे चित्त में हो, जो त्रुटि तुम्हे खटकती हो, वह तुम अवश्य कहो।

मयना०—पिताजी ! उचित तो यही था कि आप मुझे ऐसे समय कुछ भी कहने के लिये विवश न करते पर आपकी आज्ञा मेरे लिये अनिवार्य्य है। अस्तु, मै इस बात से कदापि सहमत नहीं कि कोई शक्तिशाली व्यक्ति-चाहे वह राजा हो या राजेश्वर-किसी क्षुद्र मनुष्य का भी त्राता या भाग्य विधाता है। मनुष्य जो सुख दु ख पाते है सो सब अपने कर्मानुसार, जो किसी पर प्यार व द्वेष करता है वह सब पूर्व सस्कार वश ? किसी को भी किसी के सत्वापहरण का वा सत्वप्रदान का वास्तविक अधिकार नहीं है। यह तो लौकिक लीलाए है कि ससार के आप सञ्चालक हैं और ससार आप का अनुगामी। वरन यदि हृदय के नेत्र खोल कर देखिये, अज्ञानान्धकार के परदे को चीर कर देखिये, मिथ्याहकार को दूर करके देखिये और निष्पक्षभाव से, समता भाव से और स्थिर दृष्टि से देखिये तो पाइएगा कि न कोई किसी का आश्रित है न कोई किसी का भाग्यविधाता। न कोई किसी का उद्धार कर सकता है न कोई किसी का सहार कर सकता है। सारी प्रकृति, सारे जीव और ससार की सारी सचराचर सत्ता स्वतन्त्र है। केवल प्रकृति नियति क्रम मे बद्ध है। जो जसा कर्म्म करता है वह वैसा फल पाता है। जो करील बोता है वह कण्टक पाता है जो आमवृक्ष बोता है वह मीठे फल खाता है। सब कहते है कि सूर्य सब स्थलो पर अपने करुणाकरो द्वारा उज्वल ज्योति पहुँचाता है पर उलूक क्यो उसके

आलोक से-प्रासाद से वञ्चित है ? उसका दुर्भाग्य । वर्षा का अमृतश्रोत सारी वसुन्धरा को हरित फूल फल फलित, उर्व्वरा, शस्यश्यामला और रत्नप्रसविनी बना देता है पर चातक क्यो उसके रसास्वादन से वञ्चित है ? उसका दुष्कर्म । वर्षामृतधारा अनेक प्रयास करके भी चातक को अपना रसाभास नही करा सकती पर वही जब स्वाति नक्षत्र आता है तब स्वयं जीवन सुधा बनकर उसके मुख मे पतित होती है । अत स्वयं कोई भी किसी के हानि वा लाभ का उत्तरदायित्व वहन नही कर सकता-हां समय आने पर, पूर्व संस्कार होने पर, कर्म्मोदय का अवसर आने पर सब कुछ बुरा भला और हानि लाभ हो जाता है। आप वा मै अथवा इतरजन तो केवल निमित्त कारण होते हैं। पर घटना तभी घटित होती है जब कार्य कारण सयोग मिल जाता है । अतएव मनुष्य-विशाल प्रकृति के एक क्षुद्र जीव-के लिये यह अभिमान करना कि मै ही सबका त्राता विधाता वा सहारकर्ता हू सर्वथा गर्ह्य है । ससार मे जो कुछ होता है यह सब कर्म्मों की विचित्र लीला है । मनुष्य की सामर्थ्य कहा जो इसमे हस्तक्षेप करे । वह केवल उसका आदेश वहन करता है। पिता जी मुझे आशा है कि आप कुपित न होगे क्योकि आपकी आज्ञा पर ही विवश होकर मुझे ये अप्रासागिक और समय-विरुद्ध बाते कहनी पड़ी है ।

राजा पुत्री की बाते सुनकर पहले तो स्तम्भित, चकित और किकर्त्तव्य से होगये, पर पीछे वे अपना यह सार्वजनिक अपमान सहन न कर सके और उन्होने कोपान्ध होकर, उचितानुचित का ज्ञान भुलाकर, क्रोध से लड़खड़ाती गिरा से कहा—

"अरे मूर्खा ! क्या तेरे हृदय मे इतने काल की शिक्षा मे यहीविष बीजबोया गया था ? । क्या ऐसे ही ऊटपटाग उपदेशसुनने के

लिये मैंने तुझे उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान कराई ? क्या जैन-शास्त्र-शिक्षा मे इसी प्रकार माता पिता की अवज्ञा का उपदेश दिया जाता है ? अब मै भी यह देखना चाहता हूं कि तू किस प्रकार कर्म्म द्वारा उन्नत अवस्था को पहुंचाई जाती है ? मैं तुझे ऐसे ही गहनगर्त में डालकर देखूँगा कि तू किस प्रकार उसमे से कर्म्म द्वारा निकाली जाती है ?”

मयना ने कहा—“पिता जी ! किसी को विवश करके उसकी रुचि प्रकाश करानी, और फिर अपने साथ सहमत नहोने पर उसकी शिक्षा को, उसके पठित एव अध्ययन कृत शास्त्रो को दूषित एवं लाञ्छित करना, यह कहा का न्याय है ? हो सकता है उक्त बातों मे मेरा ही व्यक्तिगत स्वभाव जनित अपराध हो पर इसका अर्थ यह नही कि आप मेरे कारण मेरे अध्ययन किए हुए शास्त्रो वा सिद्धान्तो को दोष दे। एक क्या लाख गर्तों मे गिरा देने पर भी यदि दैव साथ है–अदृष्ट सहायता करता है-तो मैं निकल सकूंगी” ।

इस पर सारी सभा मे कानाफूसी होने लगी। चाटुको ने मन्द स्वर से यहां तक कहा कि यह मयना ने अनुचित प्रति-द्वन्द्विता की है यह उसे न कहना चाहिये था। किसी ने कहा वह अभी अनुभवहीन निरी बालिका ही तो है, महाराज को उसके मुँह न लगना चाहिए था। किसी ने कहा इसने अपनी सारी पढ़ी पढाई विद्या पर पानी फेर दिया। पर जो न्याय और नीति का सत्य हृदय से समर्थन करने वाले थे वे या तो मौन रहे या किसी ने किसी के कान मे कह दिया कि मयनासुन्दरी ने बात तो न्याय-सगत ही कही पर राजा अपना गर्व्व खर्व्व नहीं सहन कर सकता। अस्तु इसी प्रकार की कानाफूसी सारी सभा मे होने लगी। उधर राजा ने कुपित होकर मयनासुन्दरी को अपने

सामने से दूर ले जाने की आज्ञा दी। और इस प्रकार रंग मे भंग होगया।

सभा विसर्जित हुई ? मंत्री ने राजा का क्रोध शान्त करने के लिये नम्र वचनो में मयना को अबोध एवं बालिका बता कर उसे क्षमा करने की अनेक प्रकार से प्रार्थना की और सायंकाल समीप होने के कारण वायु सेवन के लिये चलने की प्रार्थना की।

राजा ने भी जी बहलाने का उपयुक्त अवसर जानकर वायु-सेवन के निमित्त जाना स्वीकार किया और सब प्रकार की तैयारी होने पर वायु सेवनार्थ बाहर निकले।

जब राजा चलते चलते नगर के कुछ दूर बाहर पहुँचे तब सामने से एक धूल का बवडर सा उडता दीख पड़ा। उसे देखकर राजा ने मंत्री से उसके विषय मे पूछ ताछ करने को कहा। मत्री ने अङ्गरक्षक गण मे से एक को भेज कर पुछवाया। मालूम हुआ कि वह सात सौ कुष्टियो का एक बडा समूह है जो राजधानी की ओर को चला आ रहा है।

इसी पूछताछ मे वह समूह बहुत समीप आगया और राजा के इस सैन्य दल को देख अलग ही ठहर गया। और उस दल मे से एक कुष्टि आगे बढ़ कर राजा के समीप आया। उस कुष्टि समूह को देख कर राजा उलटे फिरने लगे थे। अत. उस कुष्टि ने आकर हाथ जोड़ कर महाराज से एक अपनी प्रार्थना सुन लेने को कहा। सुन कर महाराज ठहर गये। उनके ठहर जाने पर कुष्टि ने कहा —

"श्रीमान् राजराजेश्वर हमारा सात सौ कुष्टियों का एक समूह है जिसमे हमारा एक प्रधान निश्चित है। वह कुलीन है पर दैववश वह हम मे सम्मिलित हो गया। अब उसके विषय में आप से एक प्रार्थना है। आप सामर्थ्यशाली हैं, सब प्रकार शक्तिमान हैं महा प्रतापान्वित पुण्यशाली हैं, और सब की कामनाएं पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष रूप हैं इस कारण हमें भी आपसे कुछ याचना करने का साहस होता है। हमारे प्रधान का श्रीमान् अपने अन्त पुर की किसी दासी आदि की कन्या से विवाह करादे हम श्रीमान महाराज के सदा कृतज्ञ रहेगे। हमे आशा है कि महाराज हमारी प्रार्थना स्वीकार करेगे।"

राजा ने हृदय मे कहा--मयनासुन्दरी अब तुम्हारे भाग्य का निर्णय होता है। तुम्हे कुष्टी के हाथ मे अर्पण करके देखूंगा, तुम किस प्रकार अपने दिव्य रूप सौन्दर्यदाता भाग्य पर गर्व करती हो। तब उन्होंने प्रकाश रूप मे उस कुष्टी दूत से कहा—

'हमे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है। तुम कल हमारे यहा दरबार मे अपने प्रधान को लेकर आओ। वहा हम तुम्हे दासी कन्या नही वरन सुशील, सुन्दर और बुद्धिमती राज कन्या अर्पण करेगे'।

कुष्टि ने हाथ जोड कर राजा को धन्यवाद दिया और अपने समूह को चला गया।

राजा भी फिर कर अपने महलो को वापस आये।

" राजा ने मयना सुन्दरी का हाथ पकड़ कर कुष्टी को समर्पित कर दिया "

पृ० स० १७

(२)
भाग्य-चक्र

दूसरे दिन बड़ी शानवान से दरबार लगा पर कल जैसी आनन्द धारा वहां न थी, न वह उल्लास का विकास, न मृदुहास का प्रवाह, न वह चहल पहल दीख पड़ती थी, न किसी की मुखाकृति पर संतोष और शान्ति की रेखा थी। जो था वह खिन्न था उदास था, म्लान था, दुखित था और इस प्रकार बैठा था मानो उसका कुछ खो गया है। सारी सभा मे शून्यता प्रतीत होती थी।

राजा, मंत्री, राज्यगुरु, राज्य सभासद आदि सब उपस्थित थे। सुरसुन्दरी भी भावी पति सहित उपस्थित थी। एक ओर मयनासुन्दरी भी स्वावलम्ब-भाव-गर्वित प्रतिमा सी बैठी थी। इतने मे चोबदार ने कुष्टि समूह के आने की सूचना दी। महाराज मानो इसके लिये तैयार थे। उन्होने तत्काल आज्ञा दी कि कुष्टियो के प्रधान ही को उसके दो तीन आवश्यक साथियों सहित बुला लिया जाय। अस्तु,

प्रधान और दो तीन अन्य कुष्टि सभा मे आये। उन्हे यथा योग्य आसन दिया गया।

तब महाराज ने मयनासुन्दरी को बुला कर कहा "मयना! तुम्हे अब भी अपने कथन पर कुछ पश्चात्ताप होता है या नहीं देखो अभी तुम्हारे लिये समय है, तुम केवल भाग्य को ही कर्त्ता, हर्त्ता और भर्त्ता कहना छोड दो। वह देखो वह कुष्टी, वह गलिताङ्ग तुम्हारे भाग्य ने तुम्हारे लिये वर बना कर भेजा है, और यह देखो इन राजसी वीरो में से तुम्हारे लिये पति रूप मे तुम्हारी इच्छानुसार मैं चुन सकता हूँ। अब कहो, .खूब सोच समझ कर विचारपूर्वक कहो तुम किससे अपने जीवन सहचर का निर्णय कराना चाहती हो ? मुझसे या भाग्य से ?

मयना ने दृढ़तापूर्वक निर्भीक भाव से उत्तर दिया 'भाग्य से'।

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। राजा का मुख क्रोध से तमतमा उठा। उसने सिंहासन से उतर कर मयनासुन्दरी का हाथ पकड़ कर उसे कुष्ठी को समर्पित कर दिया। कुष्ठी उसके पाणिग्रहण करने मे हिचकिचाया। बोला—

'महाराज! क्रोधावेश मे ऐसा अन्धेर न कीजिये। ऐसी सुन्दरी, रूप गुणसम्पन्ना और देवाङ्गना सदृश कन्या को मुझ जैसे हतभाग्य कुष्ठी को अर्पित न कीजिये। मेरा यह गलिताङ्ग इस सर्वाङ्ग सुन्दर युवती के योग्य नही है। यदि हो सके तो आप किसी दासी पुत्री आदि से मेरा विवाह करा दीजिये अन्यथा हमे आज्ञा दीजिये हम प्रस्थान करें'।

राजा ने कहा—तुम्हारा भाग्य प्रबल है प्रधान। यह कन्या भाग्यवादिनी है। इसका भाग्य स्वय तुम्हे उन्नत एव निरोग करेगा। मैं तुम्हे इसका सहर्ष दान करता हू। तुम पाणि-ग्रहण करो।

राजा ने कन्या का हाथ उस प्रधान के हाथ मे दे दिया। मयनासुन्दरी ने अम्लान भाव से उस कुष्ठी को अपना पति स्वीकार किया और उसके बामाङ्ग पर खड़ी हो गई। मयना-सुन्दरी की माता रूपसुन्दरी और उसके मामा जो उस समय उसी सभा मे ठहरे हुए थे, राजा से मयनासुन्दरी को उसके बालहठ के लिए क्षमा करने को अनेक प्रार्थना करते रहे पर राजा भी अपनी राजहठ से तनिक विचलित न हुए। यहां तक कि लौकिक नय के अनुसार उसे यौतुक आदि से भी वंचित रक्खा। अस्तु, मयनासुन्दरी का विवाह कुष्ठी के साथ कर दिया गया। सारे कुष्ठी हृदय मे अतीव प्रसन्न हुए और महाराज प्रजापाल की

जयध्वनि करने लगे। तब प्रधान मयनासुन्दरी सहित विदा होकर अपने निवासस्थान को आये।

शनै. शनै निशा की कालिमा मे अखिल संसार डूब गया। कुष्टी प्रधान मयनासुन्दरी जैसी लोकोत्तर रूप माधुरी को पाकर बड़ी असमञ्जस मे पड़े। अपने कुष्टजर्जर शरीर को देख कर और उसके स्वर्गीय सौन्दर्य एव चन्द्र विनिन्दित मुख को देख उनके हृदय में अपार पीड़ा हुई। जब वे इस व्यथा को हृदय में दमन न कर सके तब मयना से बोले—

"सुन्दरी! यद्यपि तुम्हारा आग्रह दुराग्रह नहीं अपितु सत्याग्रह था और तुमने सत्य प्रतिपालनार्थ सर्वस्व का बलिदान किया पर फिर भी तुम्हे यह उचित न था कि तुम मुझे स्वीकार करती। मेरे इस सारे गलिताङ्ग से कुष्ट के दुर्गन्धिमय रस की धाराए बह रही हैं वे तुम्हारे इस उज्ज्वल निर्मल रूप यौवन को क्षार कर देगी, तुम्हारी इस अनुपम सौन्दर्य-प्रभा को मिटा डालेगी। मेरी इच्छा है और हार्दिक अनुज्ञा है कि तुम अपनी माता के समीप जाकर किसी अन्य सुन्दर राजकुमार से विवाह करा देने को कहो"।

यह सुन कर मयनासुन्दरी अत्यन्त क्षुभित हुई। उसने क्षुब्ध स्वर मे कहा—

"नाथ! यह आप क्या कहते हैं? आप कदाचित् नारी हृदय को नही पहचाते। स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व है, वही देवता है, पूज्य है, और प्राणाधार है। दरिद्र पति भी उसके लिये कुबेर है, गलिताङ्ग वा अङ्गविहीन भी उसके लिए कोटि-कामदेवो को लजाने वाला सर्वाङ्ग सुन्दर एवं रोग विहीन है। मेरे लिए आप मेरे जीवन-सर्वस्व, हृदयाधार और प्राणपति हैं।

मेरा शरीर या प्राण यदि आपका तिलमात्र भी उपकार कर सके तो मेरा जीवन-उद्देश सफल हो जाय। हाय मैं आप से कैसे कठोर एवं हृदयभेदक शब्द सुन रही हूं मेरे कर्ण युगल ऐसे शब्द सुनने के पहले ही क्यो न गल कर गिर गये। नाथ ! अब फिर अपने पवित्र मुख से ऐसे अपशब्द मत उच्चारण कीजियेगा"।

इतना कहते कहते मयना का कण्ठ रुद्ध हो गया। अमोल कपोलो पर बड़े बड़े मुक्ताबिन्दु ढलक पड़े तब कुष्टियो के प्रधान ने मयना को सान्त्वना देते हुए कहा—

'धन्य है देवि ! धन्य है। धन्य है उस कुक्षा को जिसमें तुम्हारे जैसी अलौकिक देवदुर्लभ स्त्रीरत्न जन्म लेती है। तुम केवल सती ही नही सती-शिरोमणि नारी हो। मैंने तुम्हारे उच्च एव विशाल हृदय को बिना पहचाने तुम्हे जो मर्म्मस्पर्शी पीड़ा पहुँचाई है उसे क्षमा करो। मैं अपने को बडा भाग्यशाली समझता हूं कि मुझे ऐसा स्त्रीरत्न प्राप्त हुआ है जो स्वर्ग मे दुर्लभ है।

इस प्रकार मयनासुन्दरी को अनेक शान्ति एव सन्तोषप्रद वचन कहकर वह कुष्टीराज सो गये। धीरे धीरे मयना भी उनकी सुश्रूषा करती हुई निद्रा माता की गोद मे जा पहुँची।

(४)

भाग्योदय

उस समय ऊषा की आभा कुछ कुछ विकसित हो रही थी जब मयनासुन्दरी उठ बैठी। थोड़ी देर पश्चात प्रधान की भी

आंखें खुलीं देखा सवेरा हो रहा है। उठ कर नित्य क्रिया शौचादि से निवृत्त हुए। तब मयना ने कहा 'आर्यपुत्र' जैन के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव भगवान का यहां परम रमणीक एवं नयनाभिराम मन्दिर है उसमे दर्शनार्थ चलिए। वहां चलने पर हमारे सर्वसंकट दूर होंगे'। प्रधान और मयनासुन्दरी दोनों मन्दिर की ओर चले।

मन्दिर मे पहुँचकर उन्होने बड़े श्रद्धाभाव से चैत्यवन्दनादि क्रिया पूर्वक भगवान के दर्शन किये। मयनासुन्दरी ने विविध प्रकार से केसर, चदन, धूप दीप पुष्प और नैवेद्य सहित भगवान् की पूजार्चना की और याचना की कि 'हे प्रभो ! आप अशरण शरण दीनबन्धो और पतितपावन हैं, हम अशरण, दीन और पतित हैं हमारी रक्षा करिये'।

कुष्टिराज ने प्रार्थना की—

'हे दयामय सौख्यसिन्धो ! आपकी जय हो। आप दुःखित जनों का दुःख दूर करने वाले, शरणागतों का रोग शोक हरने वाले और मृतप्राय एव साहसशून्यों में नव जीवन भरने वाले हो। आपके दर्शनमात्र से धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फलो की प्राप्ति होती है। जरा-मरण के जाल छुडा कर आप जीवनमुक्त करने वाले हो। हम रोगी और दुःखित हैं हमारा त्राण कीजिए'।

पाठको ! उनके ऐसी प्रार्थना करने पर एक आश्चर्य-घटना हुई जो अब तक जैन इतिहास मे अमिट और स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है कि भगवान् के गले का पुष्पहार और उनका करस्थित

'बीजोर' का फल क्रमश: कुष्टीराज के गले और हाथमें आगये।* अधिष्टायक देवता ने प्रसन्न होकर ये दोनों वस्तुए उन्हें प्रदान की। यह अद्भुत व्यापार देख मयनासुन्दरी के हर्षोल्लास की सीमा न रही? और प्रसन्नचित्त होकर दोनों पति पत्नी भगवान का गुणानुवाद करते हुए चैत्यालय से बाहर आये।

आते समय मार्ग मे जैनसाधु का उपाश्रय मिला। तब दोनो मुनिराज के दर्शनार्थ वहा गये। वहा मुनिराज धर्मोपदेश दे रहे थे। ये दोनो भी वन्दना नमस्कार करके बैठ गये। जब मुनिराज धर्मोपदेश समाप्त कर चुके तब उन्होने मयनासुन्दरी को लक्ष्य करके कहा—

"वत्स! तुम जब कभी आती थी तो तुम्हारी माता आदि परिजन तुम्हारे साथ होते थे पर आज तुम अकेली दीख पडती हो इसका क्या कारण है। दूसरे तुम्हारे साथ यह पुरुषरत्न

---

* हमारे अधिकाश पाठकों को इस विषय के मान्य करने में बड़ी आपत्ति होगी परन्तु हम उन लोगों से कुछ नहीं कहना चाहते जो भौतिक-वाद को ही अपना सर्वस्व समझते हैं और जिन्हें कोई तर्क अथवा युक्ति नहीं हरा सकती। पर हा उनकी सेवा में, जो युक्तिसगत बात और तर्क-प्रणाली को सहर्ष शिरोधार्य करते हैं अवश्य यह निवेदन करना चाहते हैं कि देवताओं का चमत्कार, जो सनातनधर्म तथा अन्य प्राचीन धर्म्मों में श्रद्धा रखने वाले हैं, उन्हें अवश्य मान्य हैं। रामायण में श्री तुलसीदास जी ने पार्वती जी की—पत्थर की मूर्ति से सीताजी को सान्त्वना वचन कहलाया है। "विनय प्रेम वस भई भवानी··· ··· ······ करुणा-निधान सुजान शील सनेह जानतरावरो" देखिये रामायण बालकाण्ड।

—लेखक

कौन है। यह सर्व लक्षण संयुक्त राजाओं का राजा एवं पुरुष-श्रेष्ठ प्रतीत होता है"।

विषाद हर्ष मे परिणित हो गया यह सुनकर मयनासुन्दरी के हर्ष की सीमा न रही उसने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त मुनिराज के सामने निवेदन किया। और अपने पति के रोग निवारण का उपाय पूछा।

तब मुनि बाले—

'पुत्री ! किसी के लिए जडी बूंटी आदि अथवा मन्त्र तन्त्रादि का उपयोग करना निस्पृह तथा ससारत्यागी साधुजनों के लिए उचित नहीं है, परन्तु हम देखते हैं कि यह तेरा पति एक प्रभावशाली ख्यातनामा और जैनधर्म का यशोवर्द्धक व्यक्ति होगा-अस्तु इसके रोग-निवारण के लिए हम तुम्हे एक सिद्ध-चक्र-यन्त्र प्रदान करते हैं। इसको शुद्ध भाव से निर्मल देह से पवित्र होकर यथा विधि प्रयुक्त करना और नवपदजी की ओली करके स्नान के जल के छींटे इन्हे देना जिससे इनका सब रोग शान्त होगा। सिद्ध चक्र मन्त्र का सतत जप करने से सर्व मनो-कामना सफल होगी। भविष्य मे भी इसके प्रभाव से अष्टसिद्धि नव निधि प्राप्त होगी। यह सदैव भूत भविष्यत् वर्त्तमान के लिये मङ्गलजनक है'।

मयनासुन्दरी ने हाथ जोड़ कर कहा—

'उपकार भगवान् ! आपका सहस्रस उपकार। हमारे जैसे अनाथो पर आपही जैसे दयालु दया करते हैं। मुझे अपने पति के कष्ट से अधिक कष्ट इस बात का होता है कि इन के रोग के कारण जैनधर्म की अवहेलना होती है'।

तब मुनिराज ने उक्त यन्त्र मयनासुन्दरी को प्रदान किया। जिसे उसने सहर्ष शिरोधार्य किया। उसके पश्चात् मयनासुन्दरी और उसके पति ने मुनिराज को वन्दना नमस्कार करके प्रस्थान किया।

मयनासुन्दरी ने अपने वासस्थान पर आकर उसी दिन से मुनि महाराज के बताये हुए विधि विधानो पूर्वक नवपद यन्त्र सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। कहना न होगा कि सिद्ध चक्र आराधन से मयनासुन्दरी के पति का शरीर नित्यप्रति निरोग और सुन्दर होता गया और कुछ ही समय मे उनका शरीर काञ्चन के वर्ण के सदृश रूप लावण्य पूर्ण होगया। इस प्रकार मयनासुन्दरी को अपने धर्म कर्म के प्रभाव से अनेक सद्गुण सयुत एवं अलौकिक रूप यौवनधारी सुन्दर पति प्राप्त हुआ। प्रधान ने उसी स्नान जल के छींटो से सातसौ कुष्टियो का भी रोग शान्त कर दिया और वे प्रसन्न होकर प्रधान को धन्यवाद देते हुए अपने अपने घर गये।

(५)

सम्मेलन

एक दिवस मयनासुन्दरी पति सहित मन्दिर से लौट रही थी। मार्ग मे एक वृद्ध स्त्री को देखकर मयनासुन्दरी के पति 'माता माता' कह कर उसके चरणो पर गिर गये। उस स्त्री ने भी 'अहो ! पुत्र श्रीपाल इतने काल पश्चात् मिले' कहकर उन्हे हृदय से लगा लिया। मयनासुन्दरी ने भी उन्हे अपनी सासू समझकर चरणस्पर्श किया।

पाठक ! आप समझे इतने दिनों तक हम आप जिन्हे कुष्टियो का प्रधान समझते आये वह वही श्रीपाल कुमार है जिन्हें चिरकाल हुआ तब हमने सातसौ कुष्टियो के समूह में छोडा था। वही श्रीपाल कुमार मयनासुन्दरी के पति है और यह स्त्री इनकी चिर वियुक्त माता है। अब चलिये इनके साथ इनके वासस्थान पर चल इनकी माता की कथा सुने।

तब श्रीपाल मयनासुन्दरी तथा श्रीपाल की माता वासस्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर श्रीपाल की माता ने श्रीपाल से उसके आरोग्य होने के विषय मे तथा मयनासुन्दरी के विषय मे पूछा। श्रीपाल ने कहा—

'माता तुमसे वियुक्त होने के पश्चात् हमारा समूह यहाँ उज्जयिनी पहुँचा। जब हम नगर की ओर आ रहे थे तब नगर के समीप मार्ग मे ही हमे यहाँ के महाराज मिल गये। वे वायुसेवनार्थ बाहर गये थे। उन्हे देख और यह जानकर कि ये यहाँ के राजा हैं हमारे प्रधान कुष्टीनायक ने उनके समीप जाकर मेरे विवाह के लिये किसी कन्या के दान करने के लिए याचना की। महाराज ने वह प्रार्थना स्वीकार की और दूसरे दिन दरबार मे आने की आज्ञा दी। हम लोग दूसरे दिन वहाँ पहुँचे तब महाराज ने इस मयनासुन्दरी से इसके भाग्यवादिनी होने पर क्रुद्ध होकर इसका पाणिग्रहण मेरे साथ कर दिया। इसके पुण्यप्रताप से श्रीसिद्धचक्र यन्त्र की प्राप्ति का सुयोग मिला और उसके प्रभाव से मेरा सारा दु:ख [illegible] दूर हो गया और निर्मल देह हो गई'।

माता ने पुत्र से बहू की प्रशंसा सुनकर और उसे राजकन्या जानकर बडा हर्ष प्रकट किया। तब उसने बहू (मयनासुन्दरी) को

अपना सब पूर्व वृत्तान्त सुनाया और फिर श्रीपाल से बिछुड कर यहाँ उज्जायिनी मे किस प्रकार आकर मिली वह सब कहा।

पाठक ! आप भी यह जानने को उत्सुक होगे कि श्रीपाल की माता श्रीपाल से वियुक्त होकर कहाँ गई और फिर यहाँ कैसे आकर मिली। अस्तु,

हम अपनी कथा का का क्रम मिलाने के लिए अब उसे वहाँ से प्रारम्भ करेगे जहाँ से हमने श्रीपाल को तथा उसकी माता को कुष्टियो की सरक्षकता मे छोडा था।

वहाँ से उनको कुष्टियो के साथ इधर उधर भ्रमण करते बहुत काल व्यतीत हो गया। श्रीपाल की माता जहाँ तक होता उनसे अलग ही रहने का यत्न करती और श्रीपाल को तथा अपने शरीर को भी उनकी धूलि से बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न करती रहती थी जिससे चिरकाल तक वह अपने को तथा श्रीपाल को उनके रोग से बचाए रही। यहाँ तक कि श्रीपाल कुमार ने शैशवावस्था को त्याग कर किशोरावस्था मे पदार्पण किया। पर इसी बीच मे दुर्दैव से श्रीपाल को कुष्टियो के सम्पर्क से कुष्ट रोग हो गया। माता यह देख कर बड़ी दु खित हुई। पूछताछ करने पर उसे कहीं किसी कुष्ट-चिकित्सक वैद्य का पता ज्ञात हुआ वह श्रीपाल को कुष्टियो के साथ छोड कर उस वैद्य की खोज मे चली। चलते २ मार्ग मे एक ज्ञानी गुरु मिले। उन्होने श्रीपाल की माता से श्रीपाल का आरोग्य सम्बन्धी सब वृत्तान्त कहा कि उज्जयनी नगरी मे तुम्हे श्रीपाल निरोगावस्था मे मिलेगे। यह सुनकर परम पुलकित होकर माता उज्जयिनी नगरी को चली। दूर होने के कारण कई मास मे वह उज्जयिनी पहुँची। वहा पहुच कर जिस प्रकार यह अपने पुत्र श्रीपाल से मिली वह पाठकों को मालूम ही है।

(६)

मिजिनोत्सव

अनेक प्रार्थनाएं करने पर भी जब राजा ने हठ करके मयना-सुन्दरी का विवाह कुष्टी के साथ कर दिया। तब मयनासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी हृदय मे क्षुब्ध होकर अपने भाई के पास जो उसी नगर में मयनासुन्दरी आदि के परीक्षा-दिवस से एक विशाल भवन मे ठहरे हुए थे चली गई।

एक दिवस वह मन्दिर मे दर्शनार्थ गई। वहां उसने अपनी पुत्री मयनासुन्दरी के साथ एक स्त्री और एक महान् कान्तिमान् दिव्य सौन्दर्य्यधारी तेजस्वी पुरुष को देखा। उसे देखकर रूप सुन्दरी महाविस्मय मे पडी। पहले उसने विचार किया कि कदाचित मयना के अनुरूप यह कोई और स्त्री है परन्तु पीछे सन्देह निवारणार्थ समीप से देखने पर विशेष सोचने के कारण उसे ज्ञात हुआ कि वह मयनासुन्दरी ही है। सोचने लगी कि मेरी पुत्री का विवाह तो एक कुष्टी के साथ हुआ था यह दिव्य सौन्दर्यधारी पुरुष इसके साथ कौन है ? अरे ! क्या इस दुष्टा ने अपने कुल को कलङ्कित करके उसका परित्याग कर दिया और यह दूसरा पतिवरण किया है। इस प्रकार वह मन में सोचती हुई महा खिन्न हुई। मयनासुन्दरी ने माता को मदिर मे प्रवेश करते देख लिया था जब उसने माता को किसी असमञ्जस मे पड़कर विषण्णवदन होते देखा तब वह माता के मतलब को समझ गई। उसने माता के पास जा सविनय प्रणाम किया और कहा—"माता यह श्री जिनेश्वर भगवान् का चैत्यालय है यहां किसी प्रकार की दुश्चिन्ता का भाव हृदय में न लाना चाहिये। हमारे भी सब दु:ख शोक श्री जिनेश्वर भगवान की कृपा से नष्ट होगये। यहा सांसारिक

वार्तालाप करने से कर्म्मबन्धन होता है अतएव जहां हमारा वासस्थान है वहां चलिये। वहा आपको सब वृत्तान्त विदित होगा।

यह सुन कर रूपसुन्दरी श्रीपाल आदि के साथ उन के वासस्थान को गई। वहां पहुँच कर मयनासुन्दरी ने अपनी सासू से उसका परिचय कराया और चारो जन एकत्र हो कर बैठे। वहा श्रीपाल की माता कमलप्रभा ने मयनासुन्दरी की माता को अपना साद्यन्त वर्णन सुनाया जिसे सुनकर रूप-सुन्दरी अपनी पुत्री को ऐसा कुलीन तथा उच्चवंश-सम्भूत पति प्राप्त हुआ जान कर अतीव हर्षित एवं पुलकित हुई।

सब वृत्तान्त से अवगत होकर मयनासुन्दरी की माता अपने भाई पुण्यपाल के पास आई और उनसे सब वृत्तान्त सविस्तर कहा। पुण्यपाल अपनी भानजी का ऐसा सुखमय वृत्तान्त सुन कर अतीव पुलकित हुए और बडे समारोह सहित मयनासुन्दरी श्रीपाल और उनकी माता को सादर अपने वासस्थान पर ले आये। वहा श्रीपाल और मयनासुन्दरी आनन्दोल्लास मे निमग्न हो कर अनेक प्रकार के सुख भोगने लगे।

इस प्रकार यह सब सज्जन एकत्र हुए।

(७)

सत्य-स्वीकृति

एक दिवस महाराज प्रजापाल सन्ध्या समय वायुसेवन से लौट रहे थे तब उनकी दृष्टि सहसा एक विशाल महल की एक खिडकी पर जा पडी। उसे देख कर वे बडे चकित और विस्मित हुए।

उन्होने देखा कि उनकी पुत्री मयनासुन्दरी एक बड़े ही रूप लावण्य युक्त सुन्दर युवक के पास बैठी है, और वहां से अनेक प्रकार के वाद्यो की स्वर-तालपूर्ण मधुर ध्वनि आरही है। राजा यह देख कर ठहर गये और हृदय मे खिन्न होकर विचार करने लगे—अरे! मैंने विना विचार किये बड़ा बुरा कृत्य किया जो मयना को एक कुष्टी को अर्पित कर दिया। ऐसी रूप सौन्दर्य युक्त नव रमणी क्या कभी विषयवासनाजनित लोभ सवरण कर सकती थी? कदापि नही। अवश्य ही उसने उस कुष्टी पति को परित्याग करके यह कोई दूसरा पुरुष स्वीकार किया है। धिक्कार है मेरी उस क्रोध बुद्धि पर, तथा धिक्कार है इस कुलाङ्गार कुल कलङ्किनी मयना पर जिसने हठ कर के अपना और अपने साथ ही अपने कुल का सर्वनाश किया, अपने वश की समुज्वल कीर्ति-कौमुदी मे कलङ्क-कालिमा पोत दी।

राजा यह विचार कर ही रहे थे कि किसी प्रकार उन्हे उनके साले राजा पुण्यपाल ने देख लिया और उन्हे इस प्रकार चिन्ता-ग्रस्त मुद्रा मे खडे देख उनके हृदयगत भावो को ताड़ लिया। अस्तु वे शीघ्रता से बाहर आये और महाराज को सम्मान पूर्वक अन्दर लिवा ले गये। अब महाराज के लिये यह एक बड़ी कठिन समस्या हो गई। वे अधिक देर तक अपने औत्सुक्य को न छिपा सके और पुण्यपाल से उक्त घटना का कारण पूछा। राजा पुण्यपाल ने महाराज को आदि से अन्त तक सारी कथा विस्तारपूर्वक सुनाई और अन्त मे कहा 'महाराज यह हमारी पुण्य-प्रतिमा नारी शिरोमणि मयना के सौभाग्य का कारण है कि उसे ऐसा कुलीन राजराजेश्वर तुल्य, वीर और सुन्दर पति प्राप्त हुआ। यह सब सिद्धचक्र की महिमा है। जैनधर्म का प्रभाव है'।

महाराज पुत्री के इस सौभाग्य पर अतीवानन्दित एवं प्रफुल्लित हुए। वे शीघ्रता से प्रिय पुत्री मयना से मिलने चले जिस पर उन्होंने अपनी समझ मे अत्याचार की पराकाष्ठा करदी थी । पुण्यपाल महाराज प्रजापाल को अन्दर तो ले ही गये थे इसलिये राजा शीघ्र ही भवन के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मयनासुन्दरी इस समय आनन्दोत्सव मग्न थी। वह दूर से ही मामा के साथ अपने पिता को आते देख शीघ्रता से उठ खड़ी हुई और पिता के चरणों पर लोट गई। श्रीपाल कुमार ने भी नत-मस्तक होकर प्रणाम किया। महाराज ने पुत्री को उठा कर प्यार किया और कुमार को आशीर्वाद दिया। तनिक ध्यान से देखने पर राजा ने पहचान लिया कि वास्तव मे यह वही व्यक्ति है जिससे मैंने रोग की दशा मे मयनासुन्दरी का पाणिग्रहण कराया था।

रानी रूपसुन्दरी, मयना के साथ राजा के कठोर व्यवहार पर दु:खित चित्त होकर, अपने भ्राता के पास चली आई थी तब से वह बराबर यही थी सो महाराज ने उसे भी बुलवाकर उससे अपने कठोर व्यवहार पर पश्चात्ताप प्रकाश किया। जब सब एकत्र हो कर बैठे, तब राजा ने मयनासुन्दी से कहा—

'पुत्री ! अपने कठोर व्यवहार पर मैं पश्चात्ताप करता हू। तुमने जो कुछ सभा मे कहा था वह आग्रह रूप नहीं वरन् सत्य था। मैं अनुभव करता हू कि वह वास्तव मे मेरी ही त्रुटि और गर्वोक्ति थी। मैंने तुम्हें कठोर से कठोर दण्ड जो एक पिता अपनी सन्तान को दे सकता है दिया, पर धन्य है पुत्री तुमने उसे अम्लान भाव से सहन किया और धर्म द्वारा उस कठोर दण्ड को परास्त करके भाग्य की महत्ता का ज्वलन्त उदाहरण संसार के सम्मुख रक्खा। धन्य है तुम्हारा जैनधर्म जिसमे ऐसे तर्कों और

सिद्धान्तो का समावेश और सञ्चय है कि जो तीनो काल मे सत्य हैं। मै प्रतिज्ञा करता हू कि मैं मन, वचन, कर्म से श्रीजिनेश्वरदेव के कहे हुए मार्ग पर चलू गा। मैंने तुम्हारे साथ जो कठोर व्यवहार किया है उस पर मै हृदय से लज्जित हूं, तुम अपने हृदय मे मेरी ओर से क्षुद्रातिक्षुद्र भी क्षोभ का भाव न रखना'।

मयनासुन्दरी ने उठकर पिता के चरण पकड़ लिये और अश्रुपात करती हुई कहने लगी—'पिता जी! यह सब कर्मों की ही लीला थी आपका दोष नही था। आपके पुण्यप्रताप से सब अच्छा ही हुआ। उस घटना को भी मैं अपने पूर्वपुण्य का कारण समझती हू जिसके सयोग से मुझे देवतुल्य पति प्राप्त हुए। आप किसी भी पिछली बात का हृदय मे सोच न करे'।

पाठक! उस समय के हर्षोल्लास को लिखने की शक्ति हमारी मूक लेखनी मे नही है। वह अव्यक्त और अनिर्वचनीय आनन्द का एक श्रोत था जो अनुभवी पाठको के सरस हृदय मे वह उठा होगा। कभी वह छलछला न पड़े इस विचार से इस परिच्छेद को यहीं समाप्त करते है। महाराज प्रजापाल ने बड़ी धूमधाम से नगर की सजावट कराई और कुमार श्रीपाल मयनासुन्दरी, कुमार की माता, मयनासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी और राजा पुण्यपाल को अपने राजभवन में ले गये। वहां श्रीपाल को अलग निवास स्थान दे दिया गया। श्रीपाल कुमार मयनासुन्दरी के साथ नित्य नवीन विलास करते हुए रहने लगे।

---

(८)

विदेश-भ्रमण

चिरकाल तक श्रीपाल कुमार उस आनन्द विलास मे मग्न रहे। मयनासुन्दरी जैसी लोकोत्तर रूप माधुरीमयी रमणी को पाकर कौन ऐसा अभागा व्यक्ति हो सकता है जो अपने सब दु खो को न भूल जाय। इसी आमोद-प्रमोद मे बहुत सा समय व्यतीत होगया। एक दिन श्रीपाल कुमार बडी सजधज से कुछ अङ्ग-रक्षक गण एव मित्रो के साथ वायु सेवनार्थ नगर के बाजार मे होकर निकले। उनकी अपूर्व छटा देखने के लिए नगर निवासी चारो ओर से एकत्र होरहे थे। अनेक स्त्रिया अपनी छतो पर उन्हे देखने के लिए झुकी हुई थी। उसी अवसर पर श्रीपाल कुमार ने किसी को किसी से यह कहते सुना कि 'ये हमारे महाराज प्रजापाल के जामातृ है'। ये शब्द सुनते ही श्रीपाल के हृदय पर एक चोट सी लगी। सारा आनन्द उल्लास हवा होगया। विचारने लगे कि—"अहो! लोग मेरा परिचय श्वसुर के नाम से देते है। वास्तव मे मै हू भी बडा नीच जो इतने दिन से श्वसुरालय मे पडा हुआ हू और श्वसुर के नाम से परिचित होता हू। ससार मे जो व्यक्ति स्वनामधन्य होता है वही उत्तम कहलाता है जो पिता के नाम से परिचित होता है वह मध्यम गिना जाता है। जो मामा के नाम से जाना जाय वह अधम कहा जाता है और जो श्वसुर के नाम से पहचाना जाय वह तो अधमाधम कहलाता है। अब मुझे इस आनन्द-विलास का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। बद्ध परिकर होकर एक बार कर्म्मक्षेत्र मे कूद पडना चाहिये फिर जो मार्ग विधाता दिखलाये उसी पर चलूगा। चाहे इसमे विघ्न पडे अथवा अपरिमेय बाधाओ का सामना करना पडे।

यह विचार स्थिर कर श्रीपाल कुछ दूर जाकर अपने निवास भवन को लौट आये। वहा आकर उन्होंने माता तथा मयनासुन्दरी से अपने मनोगत भाव प्रगट किये। तब माता ने कहा —

"पुत्र! चिरकाल पश्चात् अब यह ऐसा अवसर आया है कि मैं तुम्हे सब प्रकार सुखी एव सन्तुष्ट देख सकूं, पर तुम यह बीच मे ही क्या नया झंझट खडा करते हो। अब मेरी वृद्धावस्था का समय है। न जाने कब मेरे श्वास पूरे हो जाय मैं यह नहीं चाहती कि तुम मेरे नेत्रो से ओझल हो जाओ। मेरी इच्छा है कि तुम मुझे छोड कर कहीं न जाओ"।

श्रीपाल कुमार ने कहा—

"माता! तुम वीरमाता हो। तुम ऐसी कायरता की बाते क्यो करती हो? क्या तुम्हे यह अच्छा प्रतीत होता है कि तुम अपने ससुराने के अन्न पर निर्वाह करो। मै यह नहीं सहन कर सकता कि अपने श्वसुर के नाम से पहचाना जाऊं। अस्तु, प्रसन्न चित्त से आज्ञा दो कि मै विदेश से सफल होकर आऊँ"।

तब माता ने हृदय पर वज्र रखकर पुत्र को विदेशगमन की अनुमति दी और विदा के माङ्गलिक साज सजाने चली।

माता के चले जाने पर मयनासुन्दरी पति के चरणो पर लोट कर फूट फूट कर रोने लगी। प्रियवियोग जनित व्यथा भीषण रूप धारण करके उस के सामने मानो मूर्तिमती सी खडी होगई। उसको इस प्रकार दु ख कातर होते देख श्रीपाल कुमार ने मयनासुन्दरी से अनेक सान्त्वना वचन कहे। उन्होने कहा—

"प्राणाधिके! मै जानता हू प्रिय वियोग से बढ कर दु ख ससार मे नहीं है, पर तुम्हे इस प्रकार शोक-विह्वल न होना चाहिए क्योकि मै शीघ्र ही विदेश पर्य्यटन से लौटूंगा। इसके

अतिरिक्त मनुष्य के लिए स्वनामख्यात होना ही सबसे बडा गौरव है। क्या मेरे गौरव से तुम भी गौरवान्वित न होगी? मेरी लाञ्छना से तुम भी लाञ्छित नही होती? तुम्हारा मानापमान मेरे मानापमान के साथ है, ऐसी दशा मे तुम्हे यह उचित नही मेरे गमन मे तुम किसी प्रकार की आपत्ति करो"।

मयना बोली—

"नाथ! हम अबला स्त्रियो के केवल आप ही बल है। स्त्री का एकमात्र अवलम्ब पति है। बिना आपके बल अथवा अवलम्ब के हम निरावलम्ब है, निराश्रय है। अतएव आप हमे छोडकर कही न जाइये-अथवा जहा जाये वहा हमे साथ ले चलिए। मेरे प्राण विरह की विषम वेदना क्षणमात्र भी सहन कर सकने योग्य नही है। आपके दर्शन बिना अखिल ससार अधकार मय है। आप ही मेरे हृदय मन्दिर के आराध्य देव, मेरे नेत्रो के तेज और मेरे भाल के तिलक हो। आपके बिना क्षणमात्र भी मेरे लिये युग के समान है"।

इतना कहते कहते मयनासुन्दरी के नेत्रो से अश्रु की झडी लग गई। श्रीपाल कुमार ने दृढालिङ्गन करके उसके आसू पोछते हुए कहा—

"प्रिये! तुम्हारे इस प्रकार हठ करने से मै अपने कार्य्य साधन मे कभी सफल नहीं हो सकूंगा। स्त्री को विदेश मे साथ लेजाने से बडा पग-बन्धन होता है, मै तुम्हे साथ लेजा कर तो और भी बन्धन मे पड़ूगा, अतएव तुम यही रह कर माता की सेवा करो। मै यथाशक्ति शीघ्र ही लौटने की चेष्टा करूंगा"।

इस प्रकार अनेक भांति से मयनासुन्दरी को समझा बुझा कर श्रीपाल ने शान्त किया। और तब माता से मंगल तिलक

लगवा कर तथा मयनासुन्दरी से विदा होकर कुमार निवास-भवन से बाहर आये। वहा उन्हे मामाश्वसुर राजा पुण्यपाल मिले। उन्होंने श्रीपाल को कहीं बाहर जाने को उद्यत देख पूछा—

"कुमार! आज आप कहाँ के लिये तैयार हुये है? हमे छोड कर आप कहा जा रहे है? हमारा सब सुख और सन्तोष आपके साथ है। यदि आपको अपने पिता के राज्य का ध्यान हुआ हो तो आओ, मेरे साथ आओ, मै प्रजापाल महाराज की सारी सैन्य आपके आधीन करा दू, और आप उससे विजय-लक्ष्मी लाभ करे"।

श्रीपाल कुमार बोले—

"मातुल! यह आपका कथन उचित ही है पर मै श्वसुर के साहाय्य से अपना विगत वैभव और राज्य नही लेना चाहता। मेरी इच्छा है कि अपने भुजबल द्वारा अपना देश जीतू और ससार मे स्वनामख्याति लाभ करू। आप मेरी इस पवित्र साधना मे बाधा उपस्थित न करे"।

तब राजा पुण्यपाल से विदा होकर कुमार आगे बढ़े। और चलते चलते नगर के बाहर हो गये।

मार्ग मे अनेक वन-उपवन पार करते हुए एक परम रमणीक वन मे पहुँचे। वहा अनेक प्रकार के सुन्दर सुन्दर वृक्ष थे विविध प्रकार के कुसुम विकसित हो रहे थे। त्रिविध समीर हृदय को शीतल कर रही थी।

वहां श्रीपाल कुमार ने एक विद्याधर को एक सुन्दर चपक वृक्ष के नीचे बैठे हुए ऊपर को हाथ उठाये एक विद्या साधते हुए देखा। श्रीपाल उसे कोई उत्तम पुरुष जानकर उसके पास जाकर

खडे रहे । जब वह अपना ध्यान कर चुका तब श्रीपाल को उसने प्रसन्न होकर बैठने को आसन दिया और कहा—

"आप मुझे कोई भाग्यशाली पुरुषश्रेष्ठ प्रतीत होते है इसलिए आपके आगमन से मुझे परम प्रसन्नता हुई क्योकि मै एक विद्या के साधन मे सलग्न हू पर वह विना उत्तरसाधक के मेरे चित्त की अस्थिरता से सिद्ध नही होती। यदि आप मेरे उत्तरसाधक बने तो मेरी सफलता मे सन्देह न रहे"।

श्रीपाल इसके लिए सहर्ष तैयार हो गये। और वह विद्याधर अपनी साधना मे सलग्न हुआ।

कुछ काल पश्चात विद्याधर ने परम प्रसन्न होकर नेत्र खोले और कृतज्ञता प्रकाश करता हुआ बोला—

'नर श्रेष्ठ मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ हू आपके पुण्य प्रताप तथा तेज से मै निर्विघ्न विद्या सिद्ध कर सका हू। इस कारण मै आपको यह दो जडी देता हू जिनका नाम 'जलतारिणी' एव 'शत्रु सहारिणी' है। पहली मे यह गुण है कि वह अगाध जल मे भी डूबने से रक्षा करेगी, दूसरी मे यह गुण है कि वह शत्रु के शस्त्रास्त्रो से रक्षा करेगी। शत्रु के आयुध इसके धारण करने वाले को कुछ क्षति नही पहुँचा सकते"।

श्रीपाल ने उन दोनो जडियो को सहर्ष स्वीकार किया।

तब वह विद्याधर और श्रीपाल कुमार दोनो आगे बढे। आगे चल कर उन्हे एक और व्यक्ति मिला जो स्वर्ण-रसायन-साधना मे तल्लीन था। वह विद्याधर को देख कर कहने लगा 'मै अनेक प्रकार से यत्न करने पर भी अभी 'धातु-विद्या' सिद्ध नही कर सका हू। तब श्रीपाल ने कहा—"आप एक बार मेरे देखते हुए विद्या-साधन कीजिये"।

कुमार के ऐसा कहने पर धातुवादी ने रसायन सिद्धि प्रारम्भ की और कुछ ही काल मे वह सफल होकर प्रसन्नता से नाच उठा। श्रीपाल ने देखा कि सोने का एक बड़ा 'पुरसा' उसके हाथ मे आगया है, तब वह हर्षित होकर श्रीपाल को सोना देने लगा पर उन्होने कहा 'विदेश मे मै यह भार साथ लेजा कर क्या करू गा'। परन्तु उनके बहुत मना करने पर भी उसने एक बडा सा टुकडा उनके वस्त्र के छोर मे बाध ही दिया।

श्रीपाल कुमार उन विद्यासाधको से विदा होकर आगे बढे। बहुत सा मार्ग व्यतिक्रम कर के वे भरुअच नाम के नगर मे पहुँचे। वहा जाकर उन्होने कुछ स्वर्ण को बेच कर अपने पहनने के लिए नवीन स्वच्छ वस्त्र मोल लिये और कुछ स्वर्ण मे उन दोनो जडियो को भरवा कर ताबीज बना कर दोनो बाहुओ पर धारण किया। पश्चात् कुछ काल भ्रमण करके नगर की शोभा देख कर एक विश्रामस्थल मे विश्राम के लिए बैठ गये। पर उन्हे अभी बैठे हुए कुछ ही समय हुआ था कि अस्त्रधारी एक समूह ने आकर उन्हे चारो ओर से घेर लिया।

(६)

(धवल सेठ)

श्रीपाल को वहा इस प्रकार सैनिको से घिरा हुआ छोड कर पाठको को अब हम एक नवीन सेठ से परिचय कराते है।

कुसुम्बी नगरी के एक महाधनिक 'धवल' नाम के कोटिध्वज सेठ उस समय व्यापार कार्य के लिये भरुअच आये हुये थे। वे जो व्यापारिक वस्तुए अपनो साथ कुसुबी आदि नगरो से लाये थे उनमे उन्हे द्विगुण लाभ हुआ। कई करोड रुपये की

वृद्धि हुई। जिस काल की बात हम लिख रहे है उस समय मे भरूअच नगर एक बडा बन्दरगाह था। अस्तु विदेश गमन के लिये जलयात्रा करने वाले व्यापारी तथा यात्री आदि यहाॅ से भी बडी सख्या मे बाहर जाया करते थे। धवल सेठ ने भी विदेश-गमन के लिए विविध प्रकार के जलयान तैयार कराये। एक ६० स्तम्भ का विशाल काय वाहन अपनी सवारी के लिये तथा सोलह सोलह स्तम्भ के ६८, द्रणासी एक सौ, बेगडी जाति के १०८, द्रोणमुख ८४, शिल्प जाति के ५४, खुर्प जाति के ३५, तथा आवर्त जाति के ५० और भी युद्ध करने वाले आदि सब मिला कर ५०० जलयान तैयार कराये। तथा उन्हे सब प्रकार की आवश्यक सामग्री से सजा कर ठीक कर दिये। युद्ध करने वाले जलयान दस शहस्र वीर योद्धाओं से भर दिये गये। सेठ के यान पर बडी शान से रगीली ध्वजा फहराने लगी जब प्रत्येक यान प्रबन्धकर्त्ता, दिशानिदर्शक और सञ्चालकों से सब प्रकार ठीक कर दिये गये तब सेठ जी के विशाल यान से प्रस्थान सूचक तोप दागी गई और सब यानों से तैयार होने की सूचना से उसका उत्तर देकर लङ्गर उठाये जाने लगे पर विधि का अद्भुत वैचित्र ! लङ्गर टस से मस न हुये। वे जैसे थे उसी प्रकार स्थिर रहे। मानो उनका यन्त्र बल द्वारा स्तम्भन कर दिया गया हो। यह देख कर सब यानों मे बडी खलबली पडी। स्वय सेठ यह देखने को अपने यान के बाहर निकल आया कि यानों के प्रस्थान मे विलम्ब क्यो हुआ, पर सारे यानो को पाषाण की सदृश स्तम्भित देख कर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह उच्चस्वर से कहने लगा 'अहो ! यह कैसा अद्भुत व्यापार सघटित हुआ' ! तब उसने अधिष्टात्री देवी के मन्दिर मे जाकर प्रार्थना करके इसका कारण पूछा, जिसे सुन कर देवी के पुजारी जी महाराज ने कहा—

'यह किसी देवता की कोपदृष्टि है जिसने इस प्रकार यान स्तम्भन कर दिया है। इसके दोष निवारण के लिए एक बत्तीस लक्षण सयुत पुरुष की बलि देनी चाहिये'।

यह सुनकर सेठ नगर के राजा के पास पहुँचा। और उसे सब वृत्तान्त साद्यन्त सुनाया। तब राजा ने उसे किसी ऐसे पुरुष को बलिदान के लिये ले जाने की आज्ञा दी जो विदेशी हो तथा वहा उसका कोई सगा सम्बन्धी न हो।

राजा से यह आज्ञा पाकर सेठने अपने सुभटो को आज्ञा दी कि यदि कोई उत्तम लक्षण वाला विदेशी पुरुष नगर मे दृष्टि पडे तो उसकी मुझे सूचना देकर पकड लाओ। देवी की बलि के लिये चाहिये। तब वे धवल के सैनिकगण भिन्न भिन्न भागो मे होकर नगर को खोजने लगे। उनमे से किसी सुभट ने श्रीपाल को देखकर सेठजी को उसकी सूचना दी और सेठ से आज्ञा पाकर सैनिको के एक झुण्ड ने श्रीपाल को घेर लिया।

(१०)

'जय लाभ'

श्रीपाल ने जब अपने चारो ओर अस्त्र धारी सैनिको का समूह देखा तब बडे विस्मय से उन्होंने उनसे पूछा —

भाई ! क्या तुम बता सकते हो कि निरपराध और अकारण मुझे इस प्रकार घेर लेने मे तुम्हारा क्या अभिप्राय है' ?

तब उनमे से एक अवज्ञा भरे स्वर मे बोला —

'अरे ! क्या तू नहीं जानता तेरी आयु की अवधि अब नि शेष हो चुकी है ? किसी देवी कोप से धवल सेठ के वाहन स्तम्भित हो गये है उसी देवता को धवल धीग तेरा बलिदान चढायगा'।

उपाय न देख वह श्रीपाल के चरणो मे लोट गया और अनेक प्रकार से उनकी वीरतादि का स्तुति गान करने लगा ।

तब श्रीपाल ने कहा—

"श्रेष्ठिवर ! आपने किस लिए इतना आडम्बर किया और इतना जननाश कराया ? मेरे बन्धन मे आपको क्या ऐसा अपरिमेय लाभ था जिसके कारण आपने इतने प्राणियो का बलिदान चढाया ?"

यह सुन कर सेठ ने भय से कापते हुए हाथ जोडे हुए सारा वृत्तान्त साद्योपान्त सुनाया। और कहा—"श्रीमन मुझसे यह अपराध अज्ञात रूप मे हुआ है अतएव मै क्षम्य हू। अब किसी प्रकार कृपा करके स्तम्भित वाहनो को चला दीजिये। मुझ पर अपार अनुग्रह होगा।"

श्रीपाल ने कहा—

"वाहनो को चला देने के उपलक्ष मे आप मुझे क्या देगे ?"

सेठ—"मै कुछ देने योग्य तो नही हू पर सेवा मे एक लक्ष स्वर्णमुद्रा समर्पित करूगा।"

यह सुन कर सेठ के साथ जाकर श्रीपाल उस अग्रगामी वाहन पर चढ गये और हृदय मे इष्टदेव नवपद का स्मरण करके उन्होने बडे शब्द से शखनाद किया, जिसे सुनते ही मिथ्याभिमानी देवता भयभीत होकर वाहनो को छोड कर भाग गया, और वाहन सहसा सञ्चालित हो उठे।

यह अद्भुत व्यापार देख कर सेठ के मन मे यह उत्कट इच्छा हुई कि किसी प्रकार श्रीपाल मेरे साथ चले। अत वह श्रीपाल को एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा देकर सविनय कहने लगा—

" श्रीपाल उस अग्रगामी वाहन पर चढ गए और हृदय में इष्ट-देव नवपद का स्मरण करके उन्होंने बडे शब्द से शङ्खनाद किया "

पृ० स० ४१

"श्रीमन ! आप कोई बडे भाग्यशाली पुरुष हो। मेरे दस सहस्र सेवक है और मै प्रत्येक को एक सहस्र मुद्रा मासिक वेतन देता हू और वे सब अच्छे लडाके भी है, पर आपके सामने ठहरने का किसी को भी साहस न हुआ। मै आपकी वीरता पर मुग्ध हू और चाहता हू कि आप मेरे साथ चले और जो मासिक मागे मै देने के लिए तैयार हू।"

श्रीपाल ने कहा—

सेठ जी ! आपके दस सहस्र सुभट जिस कार्य्य को करेगे मै अकेला ही उसके करने के लिए तैयार हू पर जितना मासिक आप दस सहस्र सुभटो को देते है उतना मुझे अकेले को दीजिये।

तब सेठ जी ने कुछ विचार कर अद्भुत मुद्रा से कहा—

'वीरवर ! हम वणिक लोग विना हिसाब कोई भी कार्य्य नही करते। मै अपने सब सुभटो को एक करोड स्वर्णमुद्रा मासिक देता हू, इतना सब एक ही पुरुष को देते हुए छाती फटती है।'

यह सुनकर कुमार ने कुछ हस कर कहा—

"सेठ जी ! मै भी आपका सेवक बन कर नही चलना चाहता क्योंकि विदेश मे पराधीन बनकर जाना व्यर्थ है और सेवक को स्वाधीनता कहा ? मै चाहता हू कि स्वतन्त्र रह कर विदेश भ्रमण करू और देशदेशान्तरो की नवीन वस्तुए देख कर तथा प्रकृति के अनूठे दृश्यो की छटा देख कर जीवनानन्द एव नयनानन्द लाभ करू। इसलिए आप मुझसे भाडा लेकर अपने वाहनो मे मुझे स्थान दीजिये।"

यह सुनकर सेठ के हर्ष का पार न रहा। और उसने श्रीपाल को एक सौ स्वर्ण मुद्रा मासिक किराये पर अपने वाहनो मे स्थान

देना स्वीकार किया जिसे श्रीपाल ने स्वीकार किया। और उनको एक वाहन के ऊपरी भाग मे एक उत्तम सुसज्जित कमरे मे स्थान दिया गया।

वाहन धीरे धीरे चल कर नि सीमसागर की उत्तङ्गतरङ्गो के साथ क्रीडा करने लगे।

(११)

'भाग्य-विकास'

अनेक प्रकार के जलचर जीवो को देखते हुए और सागर की उत्ताल तरङ्गो के दृश्या का आनन्दानुभव करते हुए श्रीपाल कुमार बडे उल्लास मे जलयात्रा कर रहे है।

कुछ काल पश्चात वाहन बब्बरकोट के किनारे पर पहुँचे। तब धवल ने जल ईधन आदि सामग्री लेने के लिए वाहनो को वहा ठहराया। वहा धवल सेठ के साथ आने वाले अन्य व्यापारियो ने भी उतर कर अपने कैम्प आदि खडे किये।

यह सब देख सुनकर बब्बराधीश के कर लेने वाले राजकर्मचारी वहा आये और धवल सेठ के पास जाकर 'राज्यकर' मागने लगे। तब धवल ने वृथाभिमान मे अपने सुभटो को उनको भगा देने की आज्ञा दी। धवल के सुभटो ने उन्हे मारकर भगा दिया। वे सब भागकर बब्बर राज्य दरबार मे पहुँचे और वहा धवल के कर न देने का तथा अपने पिटने का सविस्तार वृत्तान्त कहा। सब बात सुनकर राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर धवल पर चढ दौडा। उधर जब धवल ने भी राजा को सेना सहित आते देखा तब अपने दस हजार सुभटो को तैयार होकर भिड जाने की आज्ञा दी।

अत घोर युद्ध आरम्भ हुआ। उभय पक्ष के अनेक वीर लड़ लड कर मरने लगे। लोथ पर लोथ गिरने लगी। हताहतो का ढेर लग गया। दोनो तरफ से खूब डटकर युद्ध हुआ। धवल के बहुत मे सैनिक काम आये राजा के भी बहुत सिपाही मारे गये। पर अन्त मे धवल के सैनिको के पैर उखड गये और वे इधर उधर को भागने लगे। जिसको जिधर मार्ग सूझा वह उधर को ही भागा। यह देख बब्बर के सैनिको ने जयनाद किया। और राजाज्ञा से जाकर धवल की उल्टी मुश्क कस कर एक वृक्ष के साथ बाध दिया। और वाहनो का द्रव्यादि लूट कर राजा ने ससैन्य अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

अपनी सारी धन सम्पत्ति को इस प्रकार लूट ले जाते हुए देख धवल सेठ शोकार्त्त होकर रोने लगा।

तब श्रीपाल कुमार ने पास जाकर कहा—

"क्यो सेठजी! अब आपके वे सब सुभट कहा गये ? और आप भी यहा वृक्ष से बँधे पडे हो। यदि आप उन सब सुभटो के बदले मुझे एक करोड मुद्रा देते तो क्या कभी आपको ऐसा असह्य दुःख सहना पडता"।

इस पर धवल ने कहा—

"कुमार अब आप क्यो जले को और जलाते हो ?"

कुमार बोले —

"यदि मै आपका सब विगत धन वैभव लौटा दू और राजा को आपके पास बाध लाऊ तो आप मुझे क्या देगे"।

यह सुन कर सेठ हर्षित हो कहने लगा—

"मै आप को इसके उपलक्ष मे अपनी सब धन सम्पति मे से आधी तथा पाच सौ वाहनो मे से आधे वाहन अर्पित कर दूगा।"

तब श्रीपाल ने साक्षी सहित उक्त विषय का प्रतिज्ञापत्र सेठ से लिखवाया और फिर धनुष-बाण लेकर बब्बराधीश के पीछे चला।

कुछ दूर द्रुत गति से चलने पर श्रीपाल ने बब्बर राज महाकाल को अपने दल बल सहित धवल की लूटी हुई सामग्री लिये जाते हुए देखा। उन्हें देख कर श्रीपाल ने सिंहनाद किया और उच्च स्वर से कहा—

"हे बब्बराधीश! इस प्रकार एक वणिक को लूट लेने में राजाओं की वीरता प्रदर्शित नहीं होती यह तो क्षुद्र लुटेरों का कर्म है आपको तो केवल राजोचित दण्ड ही देना चाहिये। अब आइये पीछे फिर कर जरा मुझसे भी दो दो हाथ करते जाइये। आप की शक्ति देखना चाहता हूं"।

ऐसे तीव्र वचन सुनकर राजा ने श्रीपाल की ओर देखा। देखा तो बालसूर्य के सदृश एक वीर युवक हाथ में गाण्डीव लिये युद्ध के लिए आह्वान कर रहा है। उसे देखकर राजा ने कहा—

"युवक! मुझे तुम्हारे नवयौवन एवं सौन्दर्य पर दया आती है। तुम्हें क्यों ऐसी छोटी अवस्था में भी अपना जीवन प्रिय नहीं है। मैं चाहता हूं कि तुम अपने इस सुन्दर शरीर को लेकर वापस लौट जाओ और वृथा भयङ्कर समराग्नि में कूद कर अपने प्राण न दो"।

श्रीपाल ने कहा—

"यदि यौवन और सौन्दर्य की बातें करनी थीं तो फिर रानियों के वस्त्रों में मुख लपेट कर क्यों न रनवास में पड़े रहे? क्यों इस प्रकार वीर बन कर युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे? राजन्!

यह बात सुनाने का अवसर नहीं है यदि युद्ध की क्षमता नहीं है तो अपनी खड्ग मुझे देकर सेठ का दासत्व स्वीकार कीजिये ।"

यह बात महाकाल के शरीर मे मानो अग्नि बाण होकर लगी, उसने क्रोधान्ध होकर समस्त सेना का एक ही साथ श्रीपाल पर हल्ला बोल दिया । पर धन्य है श्रीपाल का वीरत्व ! वे अपने स्थान से तनिक भी विचलित न हुए और एकही स्थान पर जम कर ऐसी बाण वर्षा की कि राजा की सारी सेना ढक गई । राजा की ओर से जितने आयुधो का उपयोग हुआ वे सब श्रीपाल के शरीर पर पुष्प की तरह लगते गये । उस अकेले वीर युवक ने राजा की समस्त सेना को मथ डाला । सहस्रो हताहतो का ढेर लग गया । बडा नर नाश हुआ । शरवर्षा करते हुए श्रीपाल ऐसे प्रतीत होने लगे मानो रुद्र अनेक करो द्वारा नर-सहार करने पर तुले हुए है । अस्तु जब राजा की सेना के पैर उखड गये और सब इधर उधर भागने लगे तब श्रीपाल ने जाकर राजा को बाध लिया और सब सामग्री सहित राजा को धवल सेठ के पास ले गया । वहां पहुँच कर श्रीपाल ने धवल सेठ के बधन खोल दिये । तब सेठ खड्ग हाथ मे लेकर राजा महाकाल को बध करने के लिये दौडा । पर श्रीपाल ने उसे मार्ग मे ही रोककर कहा—"बस सेठ जी बस आपकी वीरता देखी जा चुकी है आप कृपा कर अपनी धन सम्पत्ति सभालिये । राजा बध योग्य नहीं है क्योकि नीति शास्त्रो मे अभ्यागत, शरणागत, बन्दी (जो बन्धन मे हो), रोगी, भागता हुआ, वृद्ध और बालक ये सात बध योग्य नहीं कहे गये है" ।

ऐसा कहकर कुमार श्रीपाल ने राजा महाकालके बधन खोल दिये । और अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणो से उनका सम्मान किया ।

राजा महाकाल इन सब घटनाओ पर बडे विस्मय विमुग्ध हुए। उनके हृदय मे श्रीपाल के प्रति एक अपूर्व प्रेम का भाव उदित हुआ। तब उन्होने श्रीपाल से कहा—

"महानुभाव ! आप वीर पुरुष है। आपके जैसे ही नर रत्नो को वक्षस्थल पर धारण कर मेदिनी धन्य हुई है। मै भी आपके करो द्वारा सम्मानित होकर अपने को कृतकृत्य समझता हू। अब कृपाकर आप मेरे वास स्थान पर चल कर उसकी शोभा बढाइये और मुझे अनुगृहीत कीजिये"।

यह सुनकर सेठ ने श्रीपाल से कहा "कुमार हमको अभी दूर देश रत्नद्वीप को जाना है अब अधिक विलम्ब करने से व्यापार मे भी हानि होने की सम्भावना है। अतएव अब आप का इधर-उधर जाना ठीक नहीं है"।

यह सुनकर श्रीपाल कुमार ने कहा—

'सेठ जी ! किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के प्रेमानुग्रह को ग्रहण न करना अनुचित है। अस्तु मै अपने ढाई सौ वाहन और आधी सम्पत्ति आपकी रक्षा मे छोड़कर महाराज के साथ जाता हू। आशा है कि मै जब तक लौटूगा आप तब तक यहीं विश्राम करेगे"।

इतना कह कर श्रीपाल कुमार ने महाराज महाकाल के साथ बब्बर कोट की ओर प्रस्थान किया।

हम यह लिखना भूल गये कि श्रीपाल कुमार ने धवल सेठ के उन सैनिको को सम्मान पूर्वक अपने पास रख लिया था जिनको युद्धकाल मे भाग जाने पर सेठ ने अपने पास रखना स्वीकार न किया था। उनको श्रीपाल ने अपने आधे वाहनो की रक्षा पर नियत किया। अस्तु,

बडे ठाट बाट और धूम धाम से श्रीपाल का स्वागत राजा महाकाल ने कराया। चारो ओर से नगर पुष्पमाल आदि से सजाया गया, सक्षेप मे यह है कि जो नगर मार्ग सेना आदि की सजधज के साज हो सकते है उनमे किसी भी प्रकार की कमी नही रक्खी गयी।

राजभवन मे पहुँचने पर श्रीपाल का बडे हर्ष और धूमधाम से स्वागत किया गया। अनेक प्रकार की सजावट और रमणीयता देख कर कुमार भी मुग्ध हो गये। खास निवास मे पहुँचने पर राजा महाकाल ने अपनी रानी और पुत्री को बुलाया और उनके आजाने पर श्रीपाल से कहा —

"महानुभाव ! आपके वीरोचित साहस और अतुल बल वैभव को देख कर मेरी इच्छा हुई है कि मै अपनी कन्या मदनसेना को आपके दासी पद पर नियत करू। मै आशा करता हू कि आप मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न करेगे और इसे अनुचरी रूप मे ग्रहण करके मेरी गौरव-वृद्धि करेगे"।

इस पर श्रीपाल ने कहा—

"राजन ! आपकी आज्ञा मै शिरोधार्य करता हू, पर एक अज्ञात कुल शील पुरुष को कन्यादान करना उचित नही। आप बिना मेरे परिचय के किस प्रकार अपनी कन्या का जीवन मुझे समर्पित करते है ?"

राजा बोले—"वीर श्रेष्ठ ! जो वस्तु स्वय अपने गुण दोष का प्रकाश करती है उसके परिचय की आवश्यकता नही। क्या आपके वीर कर्म्म ही आपके उच्चवश-सम्भूत होने के यथेष्ठ प्रमाण नही है, ऐसी दशा मे मै आपके परिचय की और कुछ भी आवश्यकता नही देखता"।

इस पर श्रीपाल कुमार अधोमुख होकर मौन हो रहे। तब राजा महाकाल ने शुभावसर देख कर अपनी कन्या मदनसेना का श्रीपाल से पाणिग्रहण कराया। कुछ दिन तक श्रीपाल वहाँ नव वधू के साथ आनन्दोत्सव मे मग्न रहे।

जब इस प्रकार रहते कुछ काल बीता तब एक दिन श्रीपाल ने राजा से विदा होने की आज्ञा मागी। राजा भी उनके शीघ्र गमन का कारण जानते थे। अस्तु उन्होने श्रीपाल को यौतुक मे अनेक प्रकार के धन सम्पति, रत्न राशि, दास दासी नट नटी और सेना देकर विदा किया। साथ मे अनेक प्रकार के विशाल-काय स्वर्ण और रूपा के काम के जलयान भी यौतुक मे दिये। इस अपार धन सामग्री सहित पुत्री को राजा समुद्र तट तक पहुँचाने गये और अनेक प्रकार की स्त्रीजनोचित शिक्षा देकर राजा वापस लौट गये। तब कुमार श्रीपाल अपनी पत्नी सहित स्वर्ण खचित विशालकाय वाहन मे सवार हुये और रत्नद्वीप के लिये सब वाहनो ने प्रस्थान किया।

श्रीपाल कुमार की इस अतुल धन सम्पत्ति शक्ति और दास दासियो के समूह को देख कर धवल के नीच हृदय मे अपार ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा कि यह मेरे साथ अकेला ही चला था, जिस समय यह मुझे पहले मिला था उस समय इसके पास छदाम भी नहीं थी किन्तु थोडे ही काल मे यह अपार वैभव का स्वामी हो बैठा है। विना विशेष परिश्रम ही यह मेरी आधी धन सम्पत्ति तथा मेरे आधे वाहनो का मालिक हो गया। जो द्रव्य मैने अनेक छल और कौशल द्वारा अनेक कष्ट उठा कर अब तक उपार्जित किया वह इसने मेरी क्षुद्र सी भूल के कारण अनायास ही आधा बाट लिया और राजजामातृ बन बैठा। अब

वह अनेक प्रकार के नृत्य गान का आनन्द लेता हुआ अपनी पत्नी सहित रसरङ्ग में निमग्न है अतः न जाने मेरा पिछले मास का किराया भी देगा या नहीं। कहीं ऐसा न हो कि मेरे मागने पर वह कुपित हो उठे और मेरे शेष वाहन तथा धन सम्पत्ति भी छीन ले। अरे! खेद! मै इसे अपने साथ न लेता तो अच्छा रहता। पर जो हो गया उसके सोच में अब क्या लाभ है। अच्छा चलकर देखे तो सही फिर जैसा अवसर होगा देखा जायगा।

मनही मन ऐसी दुश्चिन्ता कर धवल श्रीपाल कुमार के पास वहा पहुँचा जहा कुमार राग रङ्ग में मग्न हो रहे थे। वे धवल सेठ को दूर से ही आते देख उसके मन का भाव ताड गये। उन्होंने बडे आदर सत्कार से सेठ जी का स्वागत किया और उन्हे अपनी बगल मे आसन दिया। कुछ कुशल प्रश्न और इधर उधर की वार्ता के पश्चात् श्रीपाल कुमार ने सेठ जी को एक मास का भाडा गिनवा दिया। सेठजी उसे लेकर सहर्ष अपने वाहन मे वापस आगये। परन्तु ईर्ष्या का अकुर जो सेठ जी के हृदय मे जमा वह बढकर पल्लवित होने लगा। आगे चलकर इस पर कैसा विषम फल लगता है सो पाठक आगामि परिच्छेदो मे जान सकेगे।

कुछ काल पश्चात् वाहन रत्नद्वीप के किनारे जा पहुँचे।

(१२)

'रत्न द्वीप'

रत्नद्वीप के किनारे पहुँच कर वाहनो के लगर डाल दिये गये। सब के तम्बू आदि किनारे पर तन गये। श्रीपाल कुमार के कारचोबी के काम के कैम्प खडे किये गये। अनेक प्रकार की सजावट की सामग्रियो से वे सुसज्जित किये गये। उन पर विविध

रङ्ग के ध्वजा पट फहराने लगे। कुमार श्रीपाल उन कैम्पो मे आनन्द से नृत्यगान और वाजित्र का आनन्दानुभव करने लगे। विविध प्रकार की नाट्यलीलाए होने लगी। इतने मे धवल सेठ ने आकर कहा—

"कुमार यह रत्नद्वीप नाम का बडा रमणीय प्रदेश है। इसमे व्यापार का अच्छा अवसर है। आप भी अपने ढाइसौ वाहनो की व्यापारिक सामग्री निकाल कर बेच दीजिये। द्विगुण दाम हो जायँगे। यहा अन्य सामग्री का क्रय कीजियेगा"।

यह सुनकर श्रीपाल कुमार ने कहा—

"सेठजी! मेरी सब सामग्री का आपको अधिकार है। आपही क्रय-विक्रय कीजिये। जो लाभालाभ हो उसका लेखा मात्र मुझे दिखा दीजियेगा। व्यापार के कार्य मे आप अनुभवी है। इस कारण कृपाकर इसका प्रबन्धभार आप अपने ऊपर ही लीजिये।

यह सुनकर धवल सेठ मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसने मन मे सोचा यह श्रीपाल को हानि पहुँचा कर अपने लाभ करने का अच्छा अवसर है। यदि हानि हुई तो कुमार की और लाभ हुआ तो मेरा। यह सोच कर उसने कुमार का कथन सहर्ष शिरोधार्य किया और वहा से उठ गया"।

श्रीपाल कुमार इस प्रकार व्यापार कार्य से निश्चिन्त होकर अपनी पत्नी सहित बैठे हुए विविध नाट्य लीला देख रहे थे तब एक अश्वारोही उनके कैम्प के समीप से होकर निकला। विविध प्रकार के मनोहर वाजित्र सुनकर वह वहा रुक गया। और सुमधुर वाजित्र ध्वनि सुनने लगा। कैम्प के सम्मुख होने से वह श्रीपाल की दृष्टि पडा–उन्होने उसे नवागुन्तक जान कर अन्दर

बुलवा लिया और बडे आदर मान से बैठने के लिए उचित आसन दिया। जब नाट्य लीला समाप्त हो चुकी तब श्रीपाल कुमार ने आगुन्तक पुरुष से कहा—

"हे महानुभाव ! आप कहा से और किस कारण से आ रहे है ? । यदि इस प्रदेश मे कोई नवीन घटना सुनी हो तो कृपया मनोरञ्जनार्थ सुनाइये"।

उसने कहा—"मै आपकी सेवा मे एक नवीन घटना का वर्णन करता हू कृपया ध्यान देकर सुनिये। इस प्रदेश को रत्नद्वीप कहते है। इसमे रत्नसानु पर्वत की एक बडी दीर्घ श्रेणी है। उससे आवृत एक रत्नमञ्जया नाम की परम रमणीक एव दर्शनीय नगरी है। मै वहीं का निवासी हू तथा मेरा नाम जिनदास है। उसमे विद्याधरो का कनककेतु नाम का बडा कीर्त्तिवान और बलशाली राजा है। उसकी रत्नमाला नाम की महासुन्दरी पटरानी है। उसके दिव्य सौन्दर्य धारी महा तेजस्वी चार पुत्र है जिनके नाम क्रमश कनकप्रभ, कनकशेखर, कनकध्वज और कनकरुचि है। उन चार पुत्रो पर एक महारूपवती लावण्यपूर्ण और सौन्दर्य की प्रतिमा सी एक कन्या है उसका नाम मदनमञ्जूषा है। वह रूप मे रति को, उज्वलता मे शशि को, और सुकुमारता मे सुमन-मञ्जरी को मात करती है। वह मानो सौन्दर्य्य की राशि है, सुषमा की निधि है और लावण्य की लहर है मनोहारिता मे त्रिभुवनमोहिनी है, माधुर्य्य मे सुधामाधुरी है और रसो मे शृङ्गार रस की धारा है। वह खञ्जननयनी है, कोकिलकण्ठी है और गजगामिनी है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दरी है वहा एक बडाभारी आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव भगवान का चैत्यालय है। एक दिवस वह राजकन्या

मदनमञ्जूषा आदीश्वर के मदिर मे पूजार्थ गई। वहां जाकर उसने भगवान की प्रतिमा की अत्यन्त मनोमोहिनी और नयनाभिराम अङ्ग रचना की। विविधवर्ण रञ्जित रेशमी आङ्गी पर रत्नाभरणद्वारा ऐसी अपूर्व छटा छागई कि दर्शक गण देख कर चकित हो गये। इतने मे उसके—मदनमञ्जूषा के पिता कनककेतु भी भगवान के मदिर मे दर्शनार्थ आये। वे अपनी पुत्री की की हुई अङ्गरचना देख कर मुग्ध होगये। किंकर्तव्य होकर वे थोडी देर उसे देखते रहे। तत्पश्चात् उनके हृदय मे मोह का प्रादुर्भाव हुआ और वे सोचने लगे कि मेरी कन्या ससार मे अद्वितीय सुन्दरी, विदुषी और कलाकुशल है। साहित्य, सङ्गीत और चित्रणकला मे यह अप्रतिम है। यदि इसके जोड का ही पति इसे मिले तो ठीक अन्यथा इसका जीवन निस्सार हो जायगा। ऐसा विचार करता हुआ राजा खडा रहा। इतने मे मदनमञ्जूषा भी अङ्गरचना समाप्त कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर और नमस्कार कर मूलगुम्भार द्वार से बाहर निकली। उसके निकलते ही वहा एक आश्चर्य-व्यापार घटित हुआ। 'चर मर' शब्द करते हुए मूलगुम्भारे के द्वार स्वय बन्द होगये। यह अद्भुत घटना देख कर राजा और उसकी पुत्री सब चकित रह गये और सोचने लगे कि हम से जिनेश्वर देव की कोई भयानक आशातना हुई है अन्यथा ऐसी विस्मयजनक घटना कभी न होती।

मदनमञ्जूषा सोचने लगी कदाचित् उत्तम रचना करके मैंने अपने रचना कौशल पर अनुचित अभिमान किया है, उसके फल स्वरूप मै भगवान के दर्शन से वञ्चित कर दी गई हूं। राजा सोचने लगे अरे! यह मेरे ही दुष्कर्म का परिणाम है कि मूलगुम्भार द्वार बन्द हो गये। भगवान के मन्दिर मे आकर मैंने अनुचित मोह किया। उसके ही दण्ड रूप मे भगवान के दर्शन

रुके हैं। धिक्कार है मुझे ! मैंने चैत्यालय मे आकर ऐसी आशातना की। हा ! हा !! प्रभो ! मुझ नराधम का अपराध क्षमा कीजिये और दर्शनामृतपान से नव जीवन सञ्चार कीजिये। राजा इसी प्रकार चिरकाल तक द्विविधा मे पडे और मन ही मन अपनी कुभावना को धिक्कारते रहे। पर जब उसका कुछ फल न निकला तब उन्होंने तेला * व्रत धारण किया और कायोत्सर्ग मे खडे रहे। इसी प्रकार राजा को तीन दिन व्यतीत हो गये तब तीसरी रात्रि को अर्द्धकाल मे सहसा आकाश वाणी हुई कि हे 'राजा ! तुम किसी प्रकार चिन्ता न करो। मै जैनधर्माधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी हू। यह द्वार मैंने ही बन्द किये है। जिसके दृष्टि-पात से द्वार खुलेंगे वही तुम अपनी कन्या मदनमञ्जूषा का स्वामी समझना। अब तुम अपने राजमन्दिर को लौट जाओ मैं एक मास मे ही तुम्हारे पास उस महापुरुष को ले आऊगी। देवी के ये वाक्य सुनकर सब राजमन्दिर को लौट गये, और तब से अब तक उस महापुरुष के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे है। कल वह अवधि समाप्त होने वाली है। स्वामिन आपके दिव्य सौन्दर्य और तेज को देख कर मेरा हृदय बार बार यही कह रहा है कि श्रीमान ही हमारी सुकामना को सफल करने वाले है। और श्रीमान के दृष्टिपात से ही मदिर के द्वार खुलने वाले है। अतएव मेरी सविनय प्रार्थना है कि श्रीमान चैत्यालय तक साथ चल कर हमारी आशा सफल करे'।

यह सब वृत्तान्त कुमार ने महान उत्सुकता के साथ सुना। और सवारी के लिये अश्व लाने की आज्ञा दी। जब वे अश्व के उपस्थित होने पर जाने लगे तो उन्होंने धवल सेठ को बुला कर कहा—

* तीन दिवस निराहार व्रत रख कर चौथे दिन पारना ले०

"सेठजी ! चलिये रत्नसञ्चया नगरी मे चल कर श्री जिनेश्वर देव के दर्शन करे और अपने पाप-बन्धन से मुक्त हो ।"

सेठजी ने कहा—

"कुमार ! पाप-बन्धन से मुक्त होना तो बैठे ठालो को सूझता है । यहा तो ससार-बन्धन मे एक क्षण का भी अवकाश नही है आपके पास विना मागे ही कामिनी और कञ्चन का ढेर हुआ जाता है, आप ही ऐसे कार्यों मे समय व्यतीत कर सकते है"।

यह सुन कर कुमार ने अपने अश्व की बाग मोडी और वह अश्व जिनदास के अश्व के साथ हिनहिनाता और नाचता हुआ कुमार को शुभ शकुन सूचना देता हुआ जाने लगा ।

थोडा मार्ग चलने के पश्चात् कुमार और जिनदास दोनो चैत्यालय के बाहर पहुच गये, और अपने अश्व छोड कर जिन-मन्दिर के प्राङ्गण मे पहुँचे जहा अवधि का अन्तिम दिवस होने के कारण मनुष्यो का एक बडा समूह एकत्रित था । जिनदास के साथ एक नवागुन्तक व्यक्ति को देख कर उस भीड मे कुछ खलबली सी पड गई और सब लोगो ने इन दोना को चारो ओर से घेर लिया । तब जिनदास ने कहा—

"भाइयो ! अब आप सब महानुभावो को मूलद्वार के समीप एक एक करके क्रमश जाना चाहिये और अपनी-अपनी भाग्य-परीक्षा करनी चाहिये । ये मेरे साथ आये हुए महानुभाव सब के पीछे जाएँगे" ।

यह सुन कर सब लोग क्रमश मूलद्वार के समीप जाने लगे पर द्वार जरा भी टस से मस नही हुए । अन्त मे जब एक एक करके सब जा चुके और केवल श्रीपाल कुमार ही रह गये पर

द्वार न खुला। तब सबने श्रीपाल कुमार से जाकर द्वार खोलने की चेष्टा करने को कहा।

श्रीपाल कुमार नत मस्तक हो कर मूलगुम्भार द्वार की ओर चले और उन्होंने ज्यो ही प्रणाम करके द्वार की ओर दृगपात किया त्यो ही 'अरड' शब्द करते हुए सहसा दोनो द्वार खुल गये। सब दर्शक महान आश्चर्य मे पडे हुए मूल द्वार की ओर बढ गये। यह सब अद्भुत व्यापार देख कर श्रीपाल कुमार के हर्ष मिश्रित विस्मय की सीमा न रही और उन्होंने गुम्भार द्वार के भीतर प्रवेश करके श्रीजिनेश्वरदेव की प्रतिमा का बडे प्रेम, श्रद्धा और उल्लास भरे भावो से पूजन किया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सुख-सवाद राज-महलो मे भी उड कर पहुँच गया और वहा से राजा आनन्द-पारावार मे डूबा हुआ अपनी राजमहिषी पुत्री तथा सब कुटुम्बी जन सहित अविलम्ब मन्दिर मे आ पहुँचा। यह उस समय की बात है जब श्रीपाल भगवान की नव अङ्ग पूजा मे तल्लीन थे। अस्तु,

मूलद्वार को खुले हुए देख कर राजा के हर्ष की सीमा न रही और देवी की प्रतिज्ञा पूर्ति का ध्यान कर वह अतीवानन्दित हुआ। उसने अनेक प्रकार से भगवान की वन्दनार्चना की और तब बाहर प्राङ्गण मे सकुटुम्ब आ बैठा। इतने मे श्रीपाल कुमार भी भगवान के वन्दना उपासना से निवृत्त होकर वही प्राङ्गण मे जहा अन्य सब जन उपस्थित थे आये और महाराज को प्रणाम कर बैठ गये। उनका दिव्य रूप देख कर राजा बडे चकित हुए। वे कुछ क्षण मुग्ध दृष्टि से उन्हे देखते रह गये। पीछे बोले—"हे दिव्य तेजधारी महापुरुष! तुम्हारी अलौ-किक क्षमता को देख कर हम सब विस्मय चकित रह गये है,

तुम्हारे स्वर्गीय रूप और अतुल शक्ति देख कर तुम्हारा पवित्र परिचय पाने को हम सब महान उत्सुक है। अतएव आशा करते है कि तुम अपना परिचय देकर हमे अनुगृहीत करोगे"।

यह सुन कर कुमार बडे असमञ्जस मे पड़े। उन्हे यह कभी स्वीकार न था कि वे अपने मुख से अपने कुल आदि का कीर्त्ति-गान करे। इतने मे ही वहा एक बडी आश्चर्य-जनक घटना हुई जिसने उन सब व्यक्तियो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। गगन-मण्डल मे सहसा एक उज्ज्वल आलोक दृष्टि पडा और सब लोग एकदम ऊपर की ओर देखने लगे। शनै शनै वह आलोक वहीं मन्दिर के प्राङ्गण मे उतरा और देखते देखते उस आलोक मे से एक दिव्य तेजधारी मुनि निकले जिनके पीछे अनेक देवता सेवा की विविध सामग्री लिए निकले। तब प्रथम उन्होन जाकर भगवान का स्तुति गान किया और पीछे उसी प्राङ्गण मे देवनिर्मित सिहासन पर आकर विराजमान हो गये।

पाठक ये जैन ग्रन्थविश्रुत जघा चारण मुनि थे। उन्हे देखते ही राजा तथा श्रीपाल कुमार आदि ने वन्दना नमस्कार किया। मुनिराज ने यथोचित धर्मलाभ आदि देकर उपदेश प्रारम्भ किया। अपने व्याख्यान मे श्री नवपद मन्त्र की महिमा का वर्णन करके कहने लगे—

'हे भव्य जीव! इस नवपद मन्त्र के प्रभाव से, इसकी एकान्त उपासना मे ससार के बडे से बडे बधन से क्षण भर मे जीव मुक्तिलाभ करता है और इस ससार-सागर की भव जाल रूपी उत्ताल तरङ्गो को अबाधित रूप से पार कर जाता है। अतएव तुम भी सब इसकी उपासना द्वारा श्रीपाल कुमार सदृश सुख और शान्ति लाभ करने की चेष्टा करो'।

यह सुन कर सारी उपस्थित जनता ने हाथ जोड कर श्रीपाल का वृत्तान्त पूछा। उस पर मुनिराज ने श्रीपाल कुमार की साद्योपान्त रत्नद्वीप के किनारे तक आने की सारी कथा कह सुनाई और अन्त मे कहा—

"अब उसी पुण्यात्मा श्रीपाल कुमार के पुण्य प्रभाव ही से आपके इस जिनालय के मूलद्वार खुले है और आपको जिनेश्वर भगवान का दर्शन मिला है। ये ही वे महात्मा पुण्यशाली श्रीपाल कुमार है जो आप लोगो मे इस समय उपस्थित है"।

इतना कहकर जघा चारण मुनि जिस आकाश मार्ग से आये थे उसी मार्ग से अपनी देव मण्डली सहित लौट गये।

यह सब विचित्र व्यापार देख और सुनकर राजा रानी राजकन्या तथा सब उपस्थित जन महा विस्मित तथा प्रसन्न हुए। राजा अपनी पुत्री के लिए ऐसा उच्च वश-सम्भूत तथा सर्व गुण सम्पन्न तेजस्वी वर पाकर अपने को धन्य मानने लगा। सर्वत्र कुमार श्रीपाल के अद्‌भुत रूप, बल, शक्ति तथा गुणो की चर्चा फैल गई। राजा बडे आदर मान सहित कुमार को अपने राजमन्दिर लिवा ले गये। और वहा बडे श्रद्धा मिश्रित प्रेम एव आदर भाव से श्रीपाल को कन्यादान दिया। महाराज कनककेतु ने शिविरो से कुमार की पहिली रानी भी अपने यहा बुलवा ली थी और अपनी पुत्रीवत उसका भी आदर मान किया।

कुमार श्रीपाल अपनी दोनो पाणिग्रहीता रानियो सहित आनन्द उत्सव मे मग्न रहकर रत्नद्वीप मे कालक्षेप करने लगे।

(१२)

प्रस्थान

एक दिन राजा तथा श्रीपाल कुमार दोनो श्री जिनेश्वर देव के वन्दन निमित्त चैत्यालय मे गये। वहा भगवान की अनेक प्रकार के

नृत्य गान वाद्य आदि से पूजा उपासना करने लगे। उसी समय नगर-कोतवाल ने आकर महाराज को सूचना दी कि 'महाराज राज्यकर (दान) की चोरी करने वाले तथा बड़ी कठिनता से बन्धन में आने वाले चोर को हम पकड़ लाए हैं। इसे बार बार राजाज्ञा सुनाई गई तब भी इसने कर चुकाना स्वीकार न किया। वरन पकड़ने के लिये जाने पर इसने बल प्रयोग किया। हमारे पूर्ण शक्ति को व्यवहार में लाने पर इसने आत्म-समर्पण किया है। अब जो प्रभु की आज्ञा हो वह किया जाय'। यह सब सुनकर राजा बोले—'उसे चोर के लिये जो दण्ड विधान है उसी से दण्डित करो'। इस पर श्रीपाल कुमार ने कहा—'स्वामि यह आप क्या अनुचित करते हैं। प्रथम तो श्री जिनालय में किसी भी प्रकार की दण्ड-आज्ञा उचित नहीं दूसरे अपराधी को बिना अपराध का कारण पूछे उसके परोक्ष में ही दण्ड की आज्ञा देना सर्वथा अन्याय और राजनीति विरुद्ध है। कम से कम दोषी को सामने बुलाना तो चाहिये'।

श्रीपाल की बात सुनकर राजा ने अपराधी को उपस्थित करने की आज्ञा दी। धवल सेठ बन्दी की दशा में राजा के सम्मुख लाये गये। उन्हें देखते ही श्रीपाल कुमार ने आसन से उठते हुए महा विस्मय मिश्रित तीव्र स्वर में कहा—

"राजन! यह मैं क्या देखता हूँ। यह तो मेरे पितृव्य कोटाधिपति धवल सेठ हैं, इन्हीं के कृपाकटाक्ष से मैं इतना सम्पन्न और सौभाग्यशाली हो सका हूँ, इन्हीं के कारण मैं रत्नद्वीप में आकर आपकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर सका हूँ, और इन्हीं के लिये ऐसा दण्ड विधान! कृपया इनको शीघ्र बन्धन-मुक्त कीजिये"।

राजा ने श्रीपाल कुमार के उक्त वचन बडी व्याकुलता से अन्त तक सुने। और तब उठ कर उन्होने स्वय धवल सेठ को बन्धन से मुक्त किया और उन्हे उचित आसन दिया तथा इस अज्ञानकृत अपराध के लिये क्षमा-याचना की।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् एक दिन धवल सेठ ने कुमार से आकर कहा—"कुमार! वाहनो की सारी सामग्री यहा बेचकर नवीन सामग्री यहा भर ली गई है और अब कोई दूसरा कार्य्य हमारे लिये शेष नहीं रह गया है, अस्तु अब यहा से चलना ही उपयुक्त है। जिस प्रकार आप कृपा करके सकुशल हमे यहा तक लाये है उसी प्रकार कृपया कुशलपूर्वक हमे स्वदेश पहुँचा दीजिये। यही हमारी आपसे प्रार्थना है"।

कुमार ने भी सोचा--माता, मयना और मातृभूमि को छोडे हुए भी अधिक समय बीत चुका है और यात्रा का उद्देश भी पूर्ण होगया। ऐसी दशा मे अनावश्यक समय व्यतीत करना उचित नहीं-यह सोच कर उन्होने यात्रा की तैयारी करने की आज्ञा दी और आपने राजा के समीप जाकर विनम्र भाव से बिदा मागी।

बिदा की बात सुनकर राजा के हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। परन्तु कन्या अन्त मे दूसरे घर जाती ही है यही सोच-कर वे आत्मसवरण करके बोले--

"पुत्र! सहर्ष जाओ। पर हमे विस्मृत न कर देना। मदन-मञ्जूषा के विषय मे हम तुम्हे कर्त्तव्य का उपदेश देना नहीं चाहते। पर इतना अवश्य कहेंगे कि वह बडे लाड प्यार से पाली हुई है उसकी उपेक्षा न करना"।

तब नृपति ने बडे धूमधाम से कुमार की यात्रा का प्रबन्ध कराया। अनेक प्रकार के शीघ्रगामी, नाना प्रकार की रमणीय सामग्रियो से सुसज्जित, तथा स्वर्णरूपाखचित जलयान कुमार की यात्रा के लिये दिये। तब कुमार तथा मदनमजूषा राजा से साश्रु नयन बिदा हुए। और सब वाहनो को ठीक करके कुमार ने शुभ मुहूर्त्त मे रत्नद्वीप से प्रस्थान किया।

(१४)

गुप्त-रहस्य

द्रुतगामी वाहनो के एक कमरे मे धवल सेठ सचिन्त्य मुद्रा से सिर नीचा किये तकिये के सहारे बैठा है। कुछ बडबडा रहा है। पाठक चुपचाप हमारे साथ आकर इसकी बात सुनिये। यह कितना ही धीरे कहे पर हमसे छिपा नही सकता। वह कह रहा है 'यह तो मैने अपने हाथ से अपने पैरो मे कुल्हाडी मारी है यदि मै उसी समय लक्ष मुद्रा देकर बिदा कर दिये होता तो मुझे इतना मनस्ताप न भोगना होता। हाय मेरी ही समृद्धि, मेरे ही वाहन, मेरे ही सैनिक लेकर यह मेरा ही स्वामी बन बैठा। यह अकेला घर से निकला और इस समय अतुल धन तथा रूपराशि का स्वामी बना बैठा है। लक्ष्मी तो मानो अभागे के चरणो मे लोटती है। कैसी रूप लावण्य पूर्ण दो मदन की राते और प्रीति जैसी नव रमणिया पागया है। हाय! हाय!! मैने आजीवन तेली के बैल की तरह श्रम करके यह धनोपार्जन किया और इसने तनिक देर मे सब आधा बँटवा लिया। क्यो इस अधम को मैने साथ लिया! खैर 'गतन्नशोचम' पर अब क्यो न मैं किसी उपाय से इसको मारकर सब बखेड़ा ही मिटा दू?'

सहसा यह बात मुख मे निकलते ही धवल सेठ का मुख चमकित हो उठा। उसने अपने चार मित्रो को परामर्श के लिये बुला भेजा। कुछ काल प्रतीक्षा करने पर वे चारो ही उपस्थित हुए। तब सेठ ने अपने मनोगत भावो को उन्हे ज्यो का त्यो समझा दिया। सब सुनकर एक बोला —

"धन्य है सेठ जी आपकी विचार बुद्धि को! अपने जीवन-रक्षक के लिए भक्षक बनना आप जैसे ही सज्जनो को शोभा देता है। अरे कृतघ्न! जितने उपकार श्रीपाल ने तुम्हारे साथ किये है उनके लिए यदि कोई अन्य होता तो अपने शरीर की खाल की जूतिया बनाकर उन्हे पहिराता। परन्तु उपकार मानना तो दूर रहा तुम से उनकी ऋद्धि-वृद्धि भी सहन न हो सकी। उपकार के बदले अपकार करते भी तुम्हे लज्जा नही आती। परस्त्री, परधन पर कुदृष्टि डालना सज्जनो का काम नही है। अपने उपकार करने वाले दयालु सज्जनशिरोमणि वीर श्रेष्ठ एव धर्ममूर्ति कुमार श्रीपाल के तुम्हे चरण धो धो कर पीने चाहिये। क्या सेठजी उस समय को भूल गये जब उनसे क्षमायाचना करके बधनमुक्त हुए थे? तथा पाचसौ वाहन चलाने के लिये रो रो कर प्रार्थना करते थे। अथवा वह बब्बर महाकाल का कठोर बन्धन, सर्वस्वापहरण करके चल देना, याद नही है? यदि कुमार श्रीपाल न होते तो तुम्हारी क्या दशा होती? गली गली भीख न मागते फिरते अथवा रत्न सञ्चया की गलियो मे काला मुंह करा कर गधे पर चढे चढे न फिरते? एक बार तो उन सब बातो का विचार किया होता, पर छलनी के समान तुम केवल दुर्गुणो के ही आगार हो, गुण तुम मे कदापि नही ठहर सकते। ऐसी दुश्चिन्ताए करके तुम क्यो अकाल मे ही काल के गाल मे जाना चाहते हो। मूर्खाधिपति! तुम उसका

कुछ भी नहीं बिगाड़ सकोगे केवल तुम्हीं महा कष्ट मे पड़ोगे। हमारी इच्छा है कि हम से इस विषय मे तुम भविष्य मे कभी परामर्श न करो। और न ऐसी कुत्सित तथा घृणित कृति का हम तुम्हे कभी परामर्श दे सकते है। आशा है कि तुम अब भी सम्हलने का यत्न करोगे और ऐसी कुचेष्टाओ का त्याग करोगे।"

ऐसा कह कर वे चारो मित्र उस समय धवल सेठ को नाना प्रकार की उहापोह करते हुए छोड़ गये। इसी प्रकार अनेक दुष्कल्पनाओ तथा मनोविकारो मे धवल का बहुत सा काल व्यतीत हो गया। तब उन चारो मे से एक ने धवल के पास आकर कहा --

"सेठजी, आपने अपने सब अन्य मित्रो को देखा अब तक कैसी चुपडी चुपडी बाते करते थे, परन्तु समय पडने पर देख लिया कैसी उपदेशको जैसी लम्बी चौडी हाक कर चल दिये। मै सब प्रकार तन, मन, धन से सहायता करने को तैयार हू। हमारे ही आश्रय मे रह कर हमी पर प्रभुत्व स्थापन करे यह हम कभी सहन नहीं कर सकते। और इसमे अन्याय भी क्या है जब श्रीपाल योग्यायोग्य का विचार न कर हमारा स्वामी बन बैठने की चेष्टा मे है तब हम भी क्यो उस पाश के निवारण की चेष्टा न करे? आइये सेठजी मै आप को अपनी रक्षा का सरलतम उपाय बताता हू उसके अनुसार व्यवहार करने पर दोनो रूप राशि रानिये तथा कुबेर की सम्पत्ति सब आपके हस्तगत होगी"।

ऐसा सुनकर सेठजी तो मानो नवजीवन पा गये। झट उछल कर बैठ गये। तब वे दोनो दुष्टता की प्रतिमूर्ति अनेक प्रकार की मुखाकृति बना बना कर चिरकाल तक परामर्श

करते रहे। पीछे जब वह शैतान उठ कर जाने लगा तब धवल उसके हाथ मे हाथ देकर कमरे के द्वार तक पहुँचाने गया और हँसते हँसत उसे विदा किया।

(१५)

[विधि रहो बलवानिति मे मति] ?

प्रात कालीन शान्त समीरण हृदय को अत्यन्त प्रफुल्ल करने वाला होता है। तत्कालीन प्राकृतिक दृश्य और मनोरम छटा देखते ही बनती है। ऐसे ही समय श्रीपाल कुमार अपने यान के विशेष भाग मे बैठे हुए समीर सेवन कर रहे थे और जलयान उतुङ्ग तरङ्गो के साथ क्रीडा करते हुए वायु वेग से उडे जा रहे थे। इतने मे धवल भागता हुआ कुमार के पास आया और सहसा विस्मयोत्पादक स्वर कहने मे लगा—

"कुमार ! शीघ्र आइये एक अतीव आश्चर्यजनक व्यापार देखिये। ऐसा विचित्र जल जन्तु कभी देखने अथवा सुनने मे भी नही आया जिसके एक शरीर मे आठ मुख हो और आठो भिन्न भिन प्रकार के। महा आश्चर्य है। यदि आप देखना चाहे तो शीघ्र आइये"।

सुनते ही कुमार झपट कर उठे और शीघ्रता से धवल के साथ चल दिये। धवल ने अपने यान मे ले जाकर कुमार को एक मचान पर जो जल के ऊपर यान मे बाधा गया था चढने का इशारा किया। कुमार सरल भाव से उस मचान पर चढ कर जल मे झाकने लगे। तब उस दुष्ट ने सुअवसर देख उस मचान की रस्सियो को कैंची से काट दिया और कुमार सहसा जल मे जा गिरे।

" कुमार सरल भाव से मचान पर चढ़ कर जल मे झाँकने लगे—,
तब उस दुष्ट ने मचान की रस्सियों को काट दिया
और कुमार जल में जा गिरे "

पृ० स० ६४

कुमार को जल मे गिरते देख धवल का वह दुष्ट मित्र मचान के समीप दौड आया और हर्षोत्कर्ष मे धवल के गले से चिपट गया। धवल भी अतीव प्रसन्न हो उसकी तथा उसके सफल षड्यन्त्र की भूरि भूरि प्रशसा करने लगा।

तब दोनो मित्रो ने कुछ परस्पर इशारा किया और ढाड मार मार कर रोने लगे। रो रो कर कहने लगे—"अरे हाय हाय अनर्थ हो गया। मचान-बंधन टूट जाने से कुमार जल मे जा गिरे। हाय! हाय! हमारा हितू, रक्षक इस प्रकार हमे अनाथ करके चल दिया। हाय! कुमार तुम हमे किसके भरोसे पर इस तरह छोड़ कर चल दिये। अरे! अब अनन्त दुःख और अपार शोक समुद्र मे हमे किस के सहारे पर छोड गये"। इसी प्रकार अनेक भाति से विलाप करने लगे। उनकी रोदनध्वनि से वहा बहुत से मनुष्य वाहनो के भिन्न भिन्न भागो मे से आकर एकत्र हो गये। उस दुःखमयी घटना को सुन सुन कर सभी विलाप करने लगे।

उधर यह दुःसवाद कुमार की दोनो रानियो ने भी सुना। सुनकर मानो उन पर भीषण वज्रपात हुआ। कटे हुए वृक्ष के समान दोनो रानियाँ सुनते ही अचेत हो गई। दासियो के वायु तथा जलोपचार करने पर चिरकाल मे उन्हे चेत हुआ। उन सुकुमारी बालाओ को स्वजनवियोग के ऐसे घोर कष्ट का कभी अनुभव नही हुआ था। सहसा अनाथ हो जाने से, वे किकर्त्तव्य-विमूढ, हतचेतन सी हो गई। कभी घोर क्रन्दन करती, कभी उन्मत्त के समान प्रलाप करने लगती। उस विस्तीर्ण नील सागर तथा अनन्त नीलाकाश के मध्य उन्हे केवल शून्य ही भास पड़ने लगा। अनन्त आकाश के तले, विस्तीर्ण भूमण्डल के ऊपर उन्हे कोई अपना अवलम्ब, आधार न देख पड़ा। उनके करुण-क्रन्दन से पाषण हृदय भी पिघलने लगा। अपार व्यथा, घोर

कष्ट, दारुण वेदना पूर्ण विषम विरहाग्नि से उनका हृदय दग्ध होने लगा। उस अनन्त यन्त्रणा को केवल उनकी अश्रुधारा ही व्यक्त करती थी। उस भयङ्कर दृश्य का वर्णन करना हमारी मूक लेखनी के सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि किसी पाठक अथवा पाठिका को ऐसा अनुभव कभी हुआ हो तो वे स्वय उस घोर कष्ट का अनुमान करले। अस्तु।

दु:ख मे, आपद काल मे समवेदना, सहानुभूति ही सबसे बडा वशीकरण मत्र है। इसी मन्त्र के उपयोग द्वारा रानियो के हृदय को वश करने के लिये धवल अपने उस दुर्बुद्धि मित्र के साथ उस अवसर पर वहा आया। और अनेक सान्त्वनापूर्ण वचन कह कर छल कौशल से बोला—

"सुन्दरियो! श्रीपाल जैसा घोर कष्ट हम लोगो को दे गये वह वर्णनातीत है। पर यह दैव-दुर्विपाक है। मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है, विधि के विचित्र विधान मे हस्ताक्षेप करने की क्षमता मनुष्य नही रखता। अतएव इस विषय मे आपका दु:ख करना निरर्थक है। सबसे अधिक शोक यदि हो सकता है तो वह मुझे है, क्योकि मेरे ऊपर उन्होने अनेक उपकार किये थे और वे मेरे सब प्रकार से सहायकर्त्ता थे। जब मैनेही धैर्य धारण कर लिया तब आपको ही अधिक शोकमग्न होने की क्या आवश्यकता है। आपके पास अपार धन है, रूप है, यौवन है। आप इसका अभी सब प्रकार सदुपयोग कर सकती हैं। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाय तो मेरा जीवन भी सार्थक होजाय। मेरे सर्वस्व की भी आपही स्वामिनी हो। मै केवल दास बन आपकी सेवा करने का अधिकार मागूंगा। आशा है कि अब इस घोर दु:खमयी परिस्थिति मे आप मेरी सेवा को अस्वीकृत न करेगी और मेरे ऊपर कृपादृष्टि रक्खेगी"।